# विषय-सूची

## सुत्तसार-२


**भूमिक ा**

**संयुत्तनिक ाय-१** **१**

**सगाथावग्ग** **१**

**१. देवतासंयुत्त .....१**

१. नळ-वग्ग .....१

२. नन्दन-वग्ग .....१

३. सत्ति-वग्ग .....२

४. सतुल्लपक ायिक -वग्ग.....३

५. आदित्त-वग्ग .....४

६. जरा-वग्ग.....५

७. अद्ध-वग्ग .....५

८. छेत्वा-वग्ग.....६

**२. देवपुत्तसंयुत्त .....७**

१. पठम-वग्ग.....७

२. अनाथपिण्डिक -वग्ग.....८

३. नानातित्थिय-वग्ग .....८

**३. क ोसलसंयुत्त.....१०**

१. पठम-वग्ग.....१०

२. दुतिय-वग्ग .....११

३. ततिय-वग्ग.....१२
**४. मारसंयुत्त.....१४**
१. पठम-वग्ग.....१४
२. दुतिय-वग्ग.....१५
३. ततिय-वग्ग.....१५
**५. भिक्खुनीसंयुत्त.....१७**
**६. ब्रह्मसंयुत्त.....१९**
१. पठम-वग्ग.....१९
२. दुतिय-वग्ग.....२१
**७. ब्राह्मणसंयुत्त.....२२**
१. अरहन्त-वग्ग.....२२
२. उपासक -वग्ग.....२३
**८. वङ्गीससंयुत्त.....२६**
**९. वनसंयुत्त.....२७**
**१०. यक्खसंयुत्त.....२९**
**११. सक्क संयुत्त.....३१**
१. पठम-वग्ग.....३१
२. दुतिय-वग्ग.....३२
३. ततिय-वग्ग.....३३
**निदानवग्ग** **३५**
**१. निदानसंयुत्त.....३५**
१. बुद्ध-वग्गो.....३५
२. आहार-वग्गो.....३६
३. दसबल-वग्गो.....३७
४. कळारखत्तिय-वग्गो.....३९
५. गहपति-वग्गो.....४०
६. दुक्ख-वग्गो.....४१

७. महावग्गो .....४२
८. समणब्राह्मण-वग्गो .....४४
९. अन्तरपेय्याल .....४५
**२. अभिसमयसंयुत्त .....४६**
**३. धातुसंयुत्त .....४७**
१. नानत्त-वग्गो .....४७
२. दुतिय-वग्गो .....४७
३. कम्मपथ-वग्गो .....४८
४. चतुत्थ-वग्गो .....४९
**४. अनमतग्गसंयुत्त .....५१**
१. पठम-वग्गो .....५१
२. दुतिय-वग्गो .....५२
**५. कस्सपसंयुत्त .....५३**
**६. लाभसक्कारसंयुत्त .....५६**
१. पठम-वग्गो .....५६
२. दुतिय-वग्गो .....५६
३. ततिय-वग्गो .....५७
४. चतुत्थ-वग्गो .....५७
**७. राहुलसंयुत्त .....५९**
१. पठम-वग्गो .....५९
२. दुतिय-वग्गो .....६०
**८. लक्खणसंयुत्त .....६१**
१. पठम-वग्गो .....६१
२. दुतिय-वग्गो .....६१
**९. ओपम्मसंयुत्त .....६२**
**१०. भिक्खुसंयुत्त .....६३**

**संयुत्तनिक ाय-२** ६५

**खन्धवग्ग** ६५

**१. खन्धसंयुत्त**.....६५

१. नकु लपितु-वग्ग.....६५

२. अनिच्च-वग्ग .....६६

३. भार-वग्ग.....६७

४. नतुम्हाकं -वग्ग.....६८

५. अत्तदीप-वग्ग .....६९

६. उपय-वग्ग.....७०

७. अरहन्त-वग्ग.....७२

८. खज्जनीय-वग्ग .....७२

९. थेर-वग्ग.....७४

१०. पुप्फ -वग्ग.....७७

११. अन्त-वग्ग.....७८

१२. धम्मक थिक -वग्ग.....७९

१३. अविज्जा-वग्ग .....८०

१४. कु क्कु ळ-वग्ग.....८१

१५. दिट्ठि-वग्ग .....८१

**२. राधसंयुत्त**.....८३

१. पठम-वग्ग.....८३

२. दुतिय-वग्ग.....८३

३. आयाचन-वग्ग .....८४

४. उपनिसिन्न-वग्ग .....८४

**३. दिट्ठिसंयुत्त**.....८५

१. सोतापत्ति-वग्ग.....८५

२. दुतियगमन-वग्ग .....८५

३. ततियगमन-वग्ग .....८६

४. चतुत्थगमन-वग्ग.....८६
**४. ओक्क न्तसंयुत्त.....८७**
**५. उप्पादसंयुत्त .....८८**
**६. कि लेससंयुत्त.....८९**
**७. सारिपुत्तसंयुत्त.....९०**
**८. नागसंयुत्त .....९१**
**९. सुपण्णसंयुत्त.....९२**
**१०. गन्धब्बक ायसंयुत्त.....९३**
**११. वलाहक संयुत्त.....९४**
**१२. वच्छगोत्तसंयुत्त .....९५**
**१३. ज्ञानसंयुत्त .....९६**
**सळायतनवग्ग ९८**
**१. सळायतनसंयुत्त .....९८**
१. अनिच्च-वग्ग .....९८
२. यमक -वग्ग.....९९
३. सब्ब-वग्ग .....९९
४. जातिधम्म-वग्ग .....१००
५. सब्बअनिच्च-वग्ग .....१००
६. अविज्जा-वग्ग .....१०१
७. मिगजाल-वग्ग .....१०१
८. गिलान-वग्ग.....१०२
९. छन्न-वग्ग .....१०३
१०. सळ-वग्ग.....१०५
११. योगक्खेमि-वग्ग .....१०६
१२. लोक क ामगुण-वग्ग.....१०७
१३. गहपति-वग्ग .....१०९
१४. देवदह-वग्ग .....११०

१५. नवपुराण-वग्ग .....१११
१६. नन्दिक्खय-वग्ग .....१११
१७. सट्ठि-पेय्याल.....११२
१८. समुद्द-वग्ग .....११३
१९. आसीविस-वग्ग .....११४
**२. वेदनासंयुत्त .....११७**
१. सगाथा-वग्ग .....११७
२. रहोगत-वग्ग .....११८
३. अट्ठसतपरियाय-वग्ग .....११९
**३. मातुगामसंयुत्त .....१२१**
१. पठमपेय्याल-वग्ग .....१२१
२. दुतियपेय्याल-वग्ग .....१२१
३. बल-वग्ग .....१२१
**४. जम्बुखादक संयुत्त.....१२३**
**५. सामण्डक संयुत्त.....१२४**
**६. मोग्गल्लानसंयुत्त .....१२५**
**७. चित्तसंयुत्त .....१२७**
**८. गामणिसंयुत्त.....१२९**
**९. असङ्खतसंयुत्त .....१३२**
(१) पठम-वग्ग .....१३२
(२) दुतिय-वग्ग .....१३२
**१०. अब्याक तसंयुत्त.....१३३**

**संयुत्तनिक ाय-३ १३४**

**महावग्ग १३४**

**१. मग्गसंयुत्त .....१३४**
(१) अविज्जा-वग्ग.....१३४
(२) विहार-वग्ग.....१३५

(३) मिच्छत्त-वग्ग .....१३५
(४) पटिपत्ति-वग्ग .....१३६
(५) अप्पमाद-वग्ग .....१३८
(६) बलक रणीय-वग्ग.....१३९
(७) एसना-वग्ग .....१४०
(८) ओघ-वग्ग .....१४०
**२. बोज्झङ्गसंयुत्त .....१४१**
(१) पब्बत-वग्ग .....१४१
(२) गिलान-वग्ग .....१४२
(३) उदायि-वग्ग .....१४३
(४) नीवरण-वग्ग .....१४४
(५) चक्क वत्ति-वग्ग.....१४४
(६) साक च्छ-वग्ग.....१४५
(७) आनापान-वग्ग .....१४६
(८) निरोध-वग्ग .....१४६
(९) गङ्गापेय्याल-वग्ग .....१४६
**३. सतिपट्ठानसंयुत्त .....१४८**
(१) अम्बपालि-वग्ग.....१४८
(२) नालन्द-वग्ग .....१४९
(३) सीलट्ठिति-वग्ग .....१५१
(४) अननुस्सुत-वग्ग .....१५१
(५) अमत-वग्ग .....१५२
**४. इंद्रियसंयुत्त .....१५४**
(१) सुद्धिक -वग्ग.....१५४
(२) मुदुतर-वग्ग.....१५४
(३) छळिंद्रिय-वग्ग .....१५५
(४) सुखिंद्रिय-वग्ग.....१५६

(५) जरा-वग्ग .....१५७
(६) सूक रखत-वग्ग.....१५८
(७) बोधिपक्खिय-वग्ग .....१५९
(८/१-१७) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग .....१५९
**५. सम्मप्पधानसंयुत्त .....१६०**
(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग .....१६०
(२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग .....१६०
**६. बलसंयुत्त .....१६१**
(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग .....१६१
(२-१) अप्पमादादि-वग्ग .....१६१
**७. इद्धिपादसंयुत्त .....१६२**
(१) चापाल-वग्ग .....१६२
(२) पासादक म्पन-वग्ग.....१६३
(३) अयोगुळ वग्ग.....१६४
(४/१-८) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग .....१६५
**८. अनुरुद्धसंयुत्त .....१६६**
(१) रहोगत-वग्ग.....१६६
(२) दुतिय-वग्ग .....१६६
**९. झानसंयुत्त .....१६८**
(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग .....१६८
(२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग .....१६८
**१०. आनापानसंयुत्त.....१६९**
(१) एक धम्म-वग्ग.....१६९
(२) दुतिय-वग्ग .....१७०
**११. सोतापत्तिसंयुत्त.....१७२**
(१) वेळुद्वार-वग्ग .....१७२
(२) राजक ाराम-वग्ग.....१७४

(३) सरणानि-वग्ग .....१७४
(४) पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग .....१७६
(५) सगाथक पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग.....१७६
(६) सप्पञ्ञ-वग्ग .....१७७
(७) महापञ्ञ-वग्ग.....१७८
**१२. सच्चसंयुत्त .....१७९**
(१) समाधि-वग्ग.....१७९
(२) धम्मचक्क प्पवत्तन-वग्ग.....१८०
(३) कोटिगाम-वग्ग.....१८१
(४) सीसपावन-वग्ग .....१८२
(५) पपात-वग्ग .....१८३
(६) अभिसमय-वग्ग .....१८४
(७) पठमआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग.....१८४
(८) दुतियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग.....१८५
(९) ततियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग.....१८५
(१०) चतुत्थआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग.....१८५
(११) पञ्चगतिपेय्याल-वग्ग .....१८६

# भूमिका

'सुत्तसार' में 'सुत्त पिटक'के सुत्तों का सार है।

भगवान बुद्ध की वाणी तीन पिटकों में सुरक्षित है –विनय पिटक ,सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक ।'विनय पिटक' में अधिकतर भिक्षुओं-भिक्षुणिओं के लिए विनय का विधान है, 'सुत्त पिटक' में सामान्य साधकोंके लिए दिये गये उपदेशों का संग्रह है और 'अभिधम्म पिटक' में विपश्यना साधना में खूब पके हुए साधकों के लिए गूढ़ धर्मोपदेश हैं।

बुद्ध-वाणी में 'सुत्त पिटक' का विशेष महत्त्व है क्योंकि सबसे अधिक सामग्री इसी पिटक में है और हर किसी के लिए उपयोगी भी। विपश्यना साधना सिखाते समय विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी इसी पिटक के उद्धरण दे-देकर धर्म समझाते हैं। अभिधम्म पिटक समझने के लिए भी सुत्त पिटक को जानने की जरूरत होती है जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ी की।

सम्यक संबुद्ध की वाणी का एक-एक शब्द सारगर्भित होता है। उसमें से सार निकालना अपने आपको धोखा देना है। अतः किसी भी पाठक के मन में यह भाव कदापि नहीं जागना चाहिए कि सार की बातें छांट-छांट कर यहां प्रस्तुत कर दी गयी हैं और बाकी सब कुछ निःसार है।

यह 'सुत्तसार' सुत्तों का सार इस मायने में है कि सुत्त पिटक में जो कुछ वर्णित है उसका यह स्थूल रूप में अविकल (बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े-तोड़े) प्रस्तुतीकरण है। इस सार की तुलना उस बयार से की जा सकती है जो रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्पों के बीच में से लांघ कर मात्र उनकी सुगंध अपने साथ हर ले जाती है। यह 'सुत्तसार' भी भगवान के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों का एक हल्का-सा **परिचयमात्र** है।

वस्तुतः यह ग्रंथ कोई नयी कृति नहीं है। विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा मूल रूप में प्रकाशित 'सुत्त पिटक' के हर ग्रंथ के साथ उसमें सम्मिलित सुत्तों का सार उनमें दिया गया है। आचार्य श्री सत्यनाराणजी गोयन्का के आदेशानुसार

यह सार इसलिए तैयार किया गया था कि साधक पहले इन्हें पढ़ कर फिर सुत्तों को पढ़ें, तो इससे सुत्त और अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगेंगे।

अब आचार्यश्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने यह उचित समझा है कि यदि ये सभी सुत्तसार स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जायँ तो एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि साधकगण जनभाषा के माध्यम से बुद्ध-वाणी को टुकड़ों-टुकड़ोंमें ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से भी सुगमतापूर्वक समझने लगेंगे। आचार्यश्री के इसी चिंतन के फलस्वरूप यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमान ग्रंथत्रय केवल सुत्तपिटक के सुत्तों का सार हैं जो कि पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। इसके पहले भाग में दीघ एवं मज्झिम निकायों का, दूसरे में संयुत्त निकाय का और तीसरे में अंगुत्तर एवं खुद्दक निकायों का समावेश है।

जब सुत्तसार तैयार किये जा रहे थे, तब विपश्यना विशोधन विन्यास के उद्भट विद्वान डॉ. अंगराज चौधरी ने इनका निरूपण कर इनमें समुचित सुधार किये थे। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं।

हमें विश्वास है कि इस कृति से विपश्यी साधकों को धर्म के अनेक अनजाने पक्षों की जानकारी मिलने के अतिरिक्त बुद्ध-वाणी को मूल रूप में पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

सभी साधकगण के प्रति मंगल भावों सहित,

स. ना. टंडन

# संयुत्तनिकाय-१

## सगाथावग्ग

### १. देवतासंयुत्त

यह संयुत्त आठ वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत इक्यासी सुत्त हैं।

#### १. नळ-वग्ग

[सुत्त – ओघतरण, निमोक्ख, उपनीय, अच्चेन्ति, कतिछिन्द,
जागर, अप्पटिविदित, सुसम्मुट्ठ, मानकाम, अरञ्ञ।]

प्रथम सुत्त के अनुसार भगवान ने एक देवता के पूछने पर उसे बताया कि मैंने बिना रुके, बिना कोशिश किये (कामभोग, भव-तृष्णा, मिथ्या-दृष्टि तथा अविद्या रूपी) बाढ़ को पार किया, क्योंकि यदि कहीं रुकता तो डूब जाता और कोशिश करता तो बह जाता। इस प्रकार उन्होंने दोनों अंतों को छोड़ कर मध्यम मार्ग को अपनाते हुए उसे अपनी बुद्धत्व-प्राप्ति के बारे में बताया।

भगवान ने मोक्ष की चर्चा करते हुए बतलाया कि तृष्णामूलक कर्म-बंधन के नष्ट हो जाने से, संज्ञा और विज्ञान के भी मिट जाने से, वेदनाओं का जो निरुद्ध और शांत हो जाना है, यही मोक्ष, प्रमोक्ष या विवेक कहलाता है।

उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि शांति चाहने वाला व्यक्ति सांसारिक भोगविलास त्याग दे।

#### २. नन्दन-वग्ग

[सुत्त – नन्दन, नन्दति, नत्थिपुत्तसम, खत्तिय, सणमान,
निद्दातन्दी, दुक्कर, हिरी, कुटिका, समिद्धि।]

प्रथम सुत्त के अंतर्गत एक देवता नंदन वन के 'सुख' की दुहाई देता है, जबकि एक अन्य देवता इसके लिए उसकी प्रताड़ना करता है – "अरहंतों के

अनुसार सारे संस्कार अनित्य हैं; उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना उनका स्वभाव है; वे उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाते हैं; उनका बिल्कुल शांत हो जाना ही 'सुख' कहलाता है।"

अनेक सुत्तों में भगवान भी देवताओं के गलत चिंतन को सुधारते हैं, यथा –

"जिसके पास कुछ नहीं, उसे आनंद भी नहीं।"

"जिसके पास कुछ नहीं, उसे चिंता भी नहीं।"

"सूर्य-समान कोई प्रकाश नहीं।"

"प्रज्ञा-समान कोई प्रकाश नहीं।"

"मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है।"

"मनुष्यों में संबुद्ध श्रेष्ठ है," इत्यादि।

एक देवता ने पहेली के रूप में भगवान से पूछा – क्या आपकी कोई झोंपड़ी नहीं? घोंसला नहीं? संतान नहीं? क्या आप बंधन से छूटे हुए हैं?

भगवान ने कहा कि मेरी कोई झोंपड़ी नहीं, घोंसला नहीं, संतान नहीं; मैं बंधन से छूटा हुआ हूं। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि झोंपड़ी से अभिप्राय माता से है, घोंसले से अभिप्राय पत्नी से है और संतान से अभिप्राय पुत्रों से है। बंधन से अभिप्राय तृष्णा से है।

एक देवता ने आयुष्मान समिद्धि के माध्यम से भगवान से सीधा संपर्क साधकर अपनी जिज्ञासा शांत की और अंत में यह समझ कर वहां से निवृत्त हुआ – "संसार में शरीर, वाणी तथा मन से कोई पाप-कर्म न करे। कामभोगों को छोड़ स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रहकर अनर्थ-कारक दुःखों का सेवन न करे।"

## ३. सत्ति-वग्ग

[सुत्त – सत्ति, फुसति, जटा, मनोनिवारण, अरहन्त, पज्जोत, सर, महद्धन, चतुचक्क, एणिजङ्घ।]

एक देवता ने भगवान से पूछा कि भीतर, बाहर जटा ही जटा होने से सभी जीव जटा में बुरी तरह उलझ रहे हैं, इस जटा को कौन सुलझा सकता है?

भगवान ने कहा कि शील, समाधि और प्रज्ञा की भावना करनेवाला ही इस जटा को सुलझा सकता है। जहां नाम और रूप, प्रतिघ और रूप-संज्ञा, सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं, वहां यह जटा कट जाती है।

उन्होंने और भी अनेक प्रकार से मार्गदर्शन किया, यथा सत्कायदृष्टि के प्रहाण के लिए स्मृतिमान हो विचरण करना चाहिए; शुद्ध, निष्पाप पुरुष पर दोष नहीं लगाना चाहिए; सभी जगह से मन को हटाना आवश्यक नहीं है, इसे केवल वहीं से हटाना चाहिए जहां पाप हो; 'मैं कहता हूं', 'मुझे कहते हैं' – ऐसा कथन केवल व्यवहारमात्र के लिए ही होना चाहिए; क्षीणास्रव भिक्षु ही संसार में उत्सुकता-रहित होते हैं, इत्यादि।

अंत में उन्होंने कहा कि पांच कामगुण और छठा मन –इनमें उत्पन्न होने वाली इच्छाओं को दूर करने से ही दुःख से छुटकारा होता है।

### ४. सतुल्लपकायिक-वग्ग

[सुत्त – सब्भि, मच्छरि, साधु, नसन्ति, उज्झानसञ्ञि, सद्धा, समय, सकलिक, पठमपज्जुन्नधीतु, दुतियपज्जुन्नधीतु।]

एक बार भगवान के समक्ष सतुल्लपकायिक देवताओं ने सत्पुरुषों के बारे में कुछ गाथाएं कहीं। भगवान ने इनका अनुमोदन किया, और अपनी ओर से कहा –"सत्पुरुषों के साथ बैठे, उनके साथ मेल-जोल करे, उनके सद्धर्म को जान लेने से कोई भी व्यक्ति सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।"

अन्य अवसरों पर भगवान ने उन्हें दान की उत्तमता के बारे में बतलाया। उन्होंने कहा कि मार-काट करते हुए और दूसरों को सताकर विषम चित्त से जो दान दिया जाता है वह दान शांति से दिये गये दान की बराबरी नहीं कर सकता। श्रद्धा से दिया गया दान बहुत प्रकार से प्रशंसनीय है, परंतु दान देने से भी बढ़कर है धर्म का जानना, जैसा कि पूर्व-काल में संत लोग प्रज्ञा से निर्वाण तक पा लेते थे।

एक उज्झानसंज्ञी देवता को भगवान ने समझाया कि तथागत सभी जीवों पर अनुकंपा करते हैं, उनमें कोई बुराई नहीं होती, न उनसे कोई भूल होती है, वे कभी विमूढ़ता को प्राप्त नहीं होते, वे बुद्धिमान सदा स्मृतिमान बने रहते हैं।

एक बार भगवान तथा उनके भिक्षुसंघ के दर्शनार्थ दसों लोकधातुओं के बहुत से देवता एकत्रित हो गये। तभी शुद्धावास के चार देवता भी वहां आ पहुँचे और भगवान के समक्ष अपनी अपनी गाथा कहने लगे। अंतिम देवता ने कहा कि जो लोग बुद्ध की शरण में आ गये हैं, उनकी दुर्गति नहीं हो सकती।

पज्जुन्न की बेटी चूलकोकनदा ने अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्ध धर्म का सार

इस प्रकार बखान किया –"संसार में शरीर, वाणी तथा मन से कोई पाप-कर्म न करे। कामभोगों को छोड़ स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रहकर अनर्थकारक दुःखों का सेवन न करे।"

## ५. आदित्त-वग्ग

[सुत्त – आदित्त, किंदद, अन्न, एकमूल, अनोम, अच्छरा, वनरोप, जेतवन, मच्छरि, घटीकार।]

एक देवता भगवान के समक्ष अपनी गाथा कहता है कि घर में आग लग जाने पर जो सामान बाहर निकाल लिया जाता है वह भलाई के लिए होता है, अन्यथा वह जल जाता। ऐसे ही संसार में भी आग लगी हुई है –बुढ़ापे की आग, मृत्यु की आग। इसे दान देकर बाहर निकाले, दान दिया हुआ खूब सुरक्षित रहता है।

कुछ प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने कहा कि कृपण लोग और दूसरों को दान देते देख, उन्हें बहकानेवाले अधोगति को प्राप्त होते हैं; और यदि वे मनुष्य योनि पाते भी हैं तो किसी दरिद्रकुल में जन्म लेकर बड़ी तंगी का जीवन बिताते हैं। परंतु यदि मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान रखने वाले होते हैं, तो वे स्वर्ग में शोभायमान होते हैं; और मनुष्य योनि में आने पर किसी बड़े धनाढ्य कुल में जन्म पाते हैं जहां उन्हें किसी प्रकार की तंगी नहीं होती।

'अच्छरा सुत्त' में देवताओं का करुण क्रंदन है कि अप्सराओं की चहल-पहल वाले, पिशाचगण से सेवित, लुभावने नंदन वन के होते हुए मुक्ति कैसे मिलेगी? इस पर भगवान ने कहा –"मार्ग बड़ा सीधा है, दिशा भयरहित है, बिना आवाज करनेवाला रथ है, जिसमें धर्म के पहिए लगे हैं। विवेक उसे रोकने का यंत्र है, स्मृति उसका आवरण है, धर्म उसका सारथि है और सम्यक दृष्टि आगे दौड़ने वाला सवार है। जिस किसी पुरुष अथवा नारी के पास इस प्रकार की सवारी है, वह उस पर चढ़कर निर्वाण तक पहुँच जाता है।

'घटीकार सुत्त' के अनुसार भगवान कस्सप के जीवनकाल में उनका उपासक रहा हुआ कुम्हार, और अब देवता पद पर आरूढ़, घटीकार भवसागर से पार हुए सात भिक्षुओं के बारे में बतलाता है। भगवान ने कहा कि यह बात तो सच है, परंतु वे किसके धर्म को जानकर भव-बंधन तोड़ने में समर्थ हुए? इस पर उस देवता ने कहा कि जहां नाम और रूप दोनों पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं, आपके उस धर्म को यहां जानकर, वे भव-बंधन को तोड़ने में समर्थ हुए।

## ६. जरा-वग्ग

[सुत्त - जरा, अजरसा, मित्त, वत्थु, पठमजन, दुतियजन, ततियजन, उप्पथ, दुतिय, कवि।]

इस वर्ग के सुत्तों में मुख्य रूप से बतलाया गया है कि -

* प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है।
* पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता।
* अपने किये हुए पुण्य-कर्म परलोक में मित्र होते हैं।
* तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है, दुःख उसका सबसे बड़ा भय है।
* आयु रात-दिन क्षय होती रहती है।
* स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है।
* तप और ब्रह्मचर्य बिना पानी का स्नान है।
* निर्वाण में अभिरत मनुष्य सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।

## ७. अद्ध-वग्ग

[सुत्त - नाम, चित्त, तण्हा, संयोजन, बन्धन, अत्तहत, उड्ढित, पिहित, इच्छा, लोक।]

इस वर्ग के अधिकांश सुत्तों में "लोक" संबंधी प्रश्न उठाये गये हैं, यथा - लोक किससे नियंत्रित होता है, यह किस बंधन में बँधा है, यह किससे सताया जा रहा है, यह किसमें प्रतिष्ठित है, इत्यादि।

इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिये गये हैं - लोक चित्त (अथवा तृष्णा) से नियंत्रित होता है, 'स्वाद लेना'- यही लोक का बंधन है, यह मृत्यु से सताया जा रहा है, यह दुःख में प्रतिष्ठित है।

अंतिम सुत्त में कहा गया है कि छः के होने से लोक उत्पन्न होता है, छः में साथ रहता है, छः को ही लेकर होता है, और छः के कारण दुःखी होता है। (जिन छः का संकेत किया गया है वे हैं छः आध्यात्मिक आयतन - आंख, कान, नाक, जीभ, काया तथा मन।)

## ८. छेत्वा-वग्ग

[सुत्त – छेत्वा, रथ, वित्त, वुट्ठि, भीता, नजीरति, इस्सरिय, काम, पाथेय्य, पज्जोत, अरण।]

लोक में छः छिद्र बताये गये हैं जहां चित्त स्थिर नहीं होता। ये हैं –आलस्य, प्रमाद, उत्साह का न होना, संयम का अभाव, निद्रा और तंद्रा।

यह भी कहा गया है कि संसार में पुरुष का सबसे श्रेष्ठ धन श्रद्धा है, अच्छी तरह अभ्यास पर उतरा हुआ धर्म सुख देता है, रसों में सबसे स्वादिष्ट सत्य है और प्रज्ञा का जीवन श्रेष्ठ जीवन कहलाता है।

श्रमण कभी किसी के दास नहीं होते और सब उनका अभिवादन करते हैं।

## २. देवपुत्तसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत तीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्ग

[सुत्त – पठमकस्सप, दुतियकस्सप, माघ, मागध, दामलि, कामद, पञ्चालचण्ड, तायन, चन्दिम, सूरिय।]

इस वर्ग के प्रथम सुत्त में देवपुत्र कस्सप ने भगवान से कहा कि मेरी समझ के अनुसार भिक्षु का अनुशासन ऐसा होना चाहिए कि वह –सदुपदेश ग्रहण करना, श्रमणों का सत्संग करना, एकांतवास और चित्त को शांत करना सीखे। भगवान ने इसका अनुमोदन किया।

अन्यान्य देवपुत्रों ने भी भगवान के समक्ष अपनी-अपनी बात रखी और अपना-अपना समाधान प्राप्त किया, जैसे –

* देवपुत्र माघ ने जान लिया कि कोई व्यक्ति क्रोध का नाश करने से सुखपूर्वक सोता है और शोक नहीं करता।

* देवपुत्र मागध ने जाना कि संसार में चार प्रकार के प्रकाश होते हैं: दिन में सूर्य तपता है, रात में चंद्रमा शोभता है, दिन हो या रात अग्नि जहां तहां प्रकाश देती है परंतु सभी तपने वालों में संबुद्ध श्रेष्ठ होता है, उसकी आभा अलौकिक होती है।

* देवपुत्र दामलि ने जाना कि क्षीणास्रव ब्राह्मण को कुछ करना शेष नहीं रह जाता, जैसे नदी तैरकर जमीन पर आ लगे मनुष्य को पूर्ववत उद्यम करना आवश्यक नहीं रह जाता।

* देवपुत्र कामद ने जाना कि विषम मार्ग पर अनार्य लोग सिर के बल गिर पड़ते हैं, परंतु आर्य जन के लिए तो वह विषम मार्ग भी समतल-सा ही होता है क्योंकि वे विषम परिस्थिति में समता बनाये रखने के अभ्यासी होते हैं।

* देवपुत्र पञ्चालचण्ड ने जाना कि जिन्होंने स्मृति-लाभ कर लिया हो, वे सु-समाहित हो, निर्वाण की प्राप्ति के लिए धर्म का साक्षात्कार कर लेते हैं।

पूर्वजन्म में तीर्थंकर रहे देवपुत्र तायन ने भगवान के समक्ष दृढ़ पराक्रम करने,

कामोंको दूर करने, कोई भी काम अच्छी तरह से करनेके बारे में गाथाएं कहीं। उसने यह भी कहा कि शिथिल कर्म, दूषित व्रत, दिखावटी ब्रह्मचर्य से कोई बड़ा फल प्राप्त नहीं होता। देवपुत्र के अंतर्धान हो जाने के बाद भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि तायन ने जो कुछ कहा है वे ब्रह्मचर्य की मूल बातें हैं।

### २. अनाथपिण्डिक-वग्ग

[सुत्त – चन्दिमस, वेण्डु, दीघलट्ठि, नन्दन, चन्दन, वासुदत्त, सुब्रह्म, ककुध, उत्तर, अनाथपिण्डिक।]

देवपुत्र नन्दन को भगवान ने बतलाया कि जो कोई शीलवान, प्रज्ञावान, भावितात्म, समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान, क्षीणस्रव, अंतिम शरीरधारी हो और जिसके सारे शोक मिट गये हों, वैसे व्यक्ति को ही लोग शीलवान कहते हैं और प्रज्ञावान भी। वैसा व्यक्ति दुःखों के परे चला जाता है और देवता भी उसकी पूजा करते हैं।

देवपुत्र चन्दन को उन्होंने बतलाया कि सदा शील का पालन करने वाला, प्रज्ञावान, सु-समाहित, पराक्रमी एवं संयमशील व्यक्ति दुस्तर बाढ़ को तैरकर पार निकल जाता है।

देवपुत्र सुब्रह्म ने भगवान से कहा कि मेरा चित्त सदा घबराया रहता है। क्या इस घबराहट से बचने का कोई उपाय है? इसपर उन्होंने कहा कि इसका उपाय है – बोध्यंग का अभ्यास, इंद्रिय-संवर और संसार से विरक्त होना।

देवपुत्र ककुध को उन्होंने समझाया कि चिंता करनेवाले को ही आनंद होता है और आनंद मनाने वाले को ही चिंता होती है। भिक्षु को न चिंता होती है, न आनंद।

एक बार देवपुत्र अनाथपिण्डिक ने भगवान के समक्ष प्रकट होकर ऋषियों से सेवित, धर्मराज (बुद्ध) द्वारा अध्युषित जेतवन के प्रति बड़ी श्रद्धा व्यक्त की और सारिपुत्त की भी प्रशंसा की। उसके अंतर्धान हो जाने के पश्चात अगले दिन भगवान ने यह सारा वृत्तांत भिक्षुओं को सुनाया और स्पष्ट किया कि अनाथपिण्डिक देवपुत्र हुआ है।

### ३. नानातित्थिय-वग्ग

[सुत्त – सिव, खेम, सेरी, घटीकार, जन्तु, रोहितस्स, नन्द, नन्दिविसाल, सुसिम, नानातित्थियसावक।]

देवपुत्र सिव ने भगवान के समक्ष सत्पुरुषों के साथ संगति करने के नाना प्रकार के लाभ गिनाये। भगवान ने भी कहा कि संतों के सद्धर्म को जानकर व्यक्ति सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

देवपुत्र सेरी ने अपने किसी पूर्वजन्म में श्रमणों, ब्राह्मणों, गरीबों, राहियों, लाचारों और भिखमंगों को खूब दान दिया था। अपने इस कार्य से उसने असीम पुण्य अर्जित किया और लंबे समय के लिए स्वर्ग-लाभी हुआ। इसे दृष्टिगत करते हुए भगवान ने कहा कि कंजूसी को त्याग, खूब दान देना चाहिए। पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है।

देवपुत्र रोहितस्स ने अपने किसी पूर्वजन्म में यह निर्णय किया कि मैं चलते-चलते लोक के अंत तक जा पहुँचूंगा, परंतु सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहकर बराबर चलते रहने पर भी वह लोक के अंत को पाये बिना बीच ही में मर गया। अब उसे भगवान समझाते हैं कि यह सही है कि लोक का अंत पाये बिना दुःख से छुटकारा नहीं होता, परंतु चलते रहने से कभी भी लोक का अंत हाथ नहीं आता। वस्तुतः इस साढ़े तीन हाथ की काया में ही लोक, लोक की उत्पत्ति, लोक का अवसान और लोक के अवसान का मार्ग – ये सभी मौजूद रहते हैं।

'सुसिम सुत्त' में आयुष्मान सारिपुत्त की पैनी प्रज्ञा और उनके अन्य सद्गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है।

'नानातित्थिय सुत्त' में पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल आदि नाना तीर्थों (आचार्यों) के श्रावक देवपुत्रों ने भगवान के समक्ष अपने-अपने आचार्यों का गुणगान किया। इसी बीच में पापी मार के आ धमकने और यह राय देने पर कि रूप के प्रति आसक्त और देवलोक में आनंद मनाने वाले ही परलोक बनाने का अच्छा उपदेश देते हैं, देवपुत्र माणवगामिय ने भगवान के परिप्रेक्ष्य में यह घोषणा की कि जैसे जलाशयों में समुद्र और नक्षत्रों में चंद्रमा श्रेष्ठ होता है, वैसे ही देवों सहित समग्र लोक में बुद्ध ही अग्रणी कहलाते हैं।

## ३. कोसलसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत पच्चीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्ग

[सुत्त – दहर, पुरिस, जरामरण, पिय, अत्तरक्खित, अप्पक, अड्ढकरण, मल्लिका, यञ्ञ, बन्धन।]

कोसल-नरेश पसेनदि की एक जिज्ञासा शांत करते हुए भगवान ने उसे कहा कि चार चीजों को 'छोटा' समझ, उनकी अवज्ञा करना उचित नहीं होता। ये चार हैं – (१) क्षत्रिय, (२) सर्प, (३) अग्नि, तथा (४) भिक्षु।

अन्यान्य अवसरों पर भगवान ने उसे और भी कई प्रकार की सीख दी, जैसे कि –

* लोभ, द्वेष और मोह पापपूर्ण चित्त वाले पुरुष को उसी के भीतर उत्पन्न होकर नष्ट कर देते हैं।

* संत पुरुषों का धर्म कभी पुराना नहीं पड़ता।

* अपने किये हुए पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होते हैं।

* काया का संयम अच्छा होता है; ऐसे ही वाणी का, मन का, सब जगह का। सब जगह संयम रखने वाला लज्जाशील व्यक्ति 'रक्षित' कहलाता है।

* कामभोगों में अनुरक्त, कामों में मदहोश यह नहीं जानते कि हम सीमा से बाहर चले गये हैं। क्योंकि इसका फल पापपूर्ण होता है, अतः बाद में कडुवाहट उनके सामने आती है।

* कोई भी अपने आप से अधिक प्यारा नहीं होता, अतः ऐसा ही हर एक के बारे में सोचकर अपनी भलाई चाहने वाला किसी दूसरे को मत सताये।

* जिस यज्ञ में भांति-भांति के भेड़, बकरे या गाएं मारी जाती हैं, सन्मार्ग पर चलने वाले महर्षि उसका समर्थन नहीं करते।

* पंडित जन लोहे, लकड़ी या रस्सी के बंधन को 'दृढ़ बंधन' नहीं कहते। 'दृढ़ बंधन' तो वह कहलाता है जो मणि और कुंडलों में अनुरक्त हो जाना, अथवा पुत्रों और भार्या के प्रति अपेक्षा का बना रहना है।

## २. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – सत्तजटिल, पञ्चराज, दोणपाक, पठमसङ्गाम, दुतियसङ्गाम, मल्लिका, अप्पमाद, कल्याणमित्त, पठमअपुत्तक, दुतियअपुत्तक।]

एक समय कोसल-नरेश पसेनदि भगवान के पास बैठा हुआ था जब कि सात जटिल, सात निर्ग्रंथ, सात नागे, सात एक शाटिक और सात परिब्राजक विविध प्रकार का सामान लिए उनके पास से गुज़रे। राजा ने भगवान से कहा कि लोक में जो अरहंत हैं अथवा अरहंत-मार्ग पर आरूढ़ हैं, ये उन लोगों में से हैं। जब भगवान ने कहा कि ये तो गृहस्थ, कामभोगी और रुपए-पैसे बटोरने वाले हैं, तब राजा ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए स्वीकार किया कि ये वस्तुतः उसके गुप्तचर थे। इस पर भगवान ने उसे कहा कि केवल ऊपरी रंग-रूप से मनुष्य की पहचान नहीं होती, कितने ही लोग छद्मवेष धारण किये घूमते-फिरते हैं – भीतर से मैले और बाहर से दमकते हुए!

एक अन्य अवसर पर पसेनदि-सहित पांच राजा यह नहीं तय कर पाये कि पांच कामभोगों में से सबसे बढ़िया कौन-सा है – रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य? जब वे निर्णय के लिए भगवान के पास गये, तब उन्होंने कहा कि पांच कामगुणों में से जिसको जो अच्छा लगे वही बढ़िया होता है।

राजा पसेनदि ने भगवान की इस शिक्षा को जीवन में उतार लिया – "सदा स्मृतिमान रहने वाले, प्राप्त हुए भोजन में मात्रा जानने वाले मनुष्य की वेदनाएं कम होती हैं और (वह भोजन) आयु को पालता हुआ धीरे-धीरे हजम करता है।" इस शिक्षा को अपनाने से उसकी खुराक कम हुई, पर शरीर सुडौल और गठीला हो गया।

कोसल-नरेश पसेनदि और मगध-नरेश अजातसत्तु के दो आपसी युद्धों का भी उल्लेख हुआ है। इनमें से एक में कोसलनरेश हारा, दूसरे में मगध-नरेश। इन प्रसंगों की जानकारी मिलने पर भगवान ने अपने उद्गार व्यक्त किये –

"जीत होने पर वैमनस्य बढ़ता है, हारा हुआ दुःखी होता है; शांत हुआ व्यक्ति हार-जीत को हटाकर सुख से रहता है।

"मारने वाले को मारने वाला मिलता है, जीतने वाले को जीतने वाला; ऐसे ही, अपने किये कर्म के फेर में पड़कर लूटने वाला लूट लिया जाता है।"

भगवान ने स्त्रियों के गुणों और अप्रमाद के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है, और कृपणता छोड़ पुण्य करने पर भी बल दिया है। परलोक में पुण्य ही प्राणियों का आधार होता है।

### ३. ततिय-वग्ग

[सुत्त - पुग्गल, अय्यिका, लोक, इस्सत्त, पब्बतूपम।]

भगवान ने कोसल-नरेश पसेनदि को बतलाया कि संसार में चार प्रकार के लोग होते हैं -

(१) अंधेरे से अंधेरे की ओर जाने वाले, (२) अंधेरे से उजाले की ओर जाने वाले, (३) उजाले से अंधेरे की ओर जाने वाले, और (४) उजाले से उजाले की ओर जाने वाले।

तदुपरांत उन्होंने यह भी समझाया कि -

* पहले प्रकार का व्यक्ति वह होता है जो नीच कुल में पैदा हुआ दुर्वर्ण, तंगी का जीवन जीता हुआ भी काया, वाणी और मन से दुराचार ही करता है; वह अभी भी दुःखी और मरणोपरांत भी दुःखी रहता है क्योंकि वह अपाय गति को प्राप्त करता है।

* दूसरे प्रकार का व्यक्ति पहले प्रकार जैसा होते हुए भी काया, वाणी और मन से सदाचार करता है; वह अभी दुःखी परंतु मरणोपरांत सुखी होता है क्योंकि सुगति को प्राप्त होता है।

* तीसरे प्रकार का व्यक्ति वह होता है जो ऊंचे कुल में पैदा हुआ, सुंदर-वर्ण, समृद्धि का जीवन जीता हुआ भी काया, वाणी और मन से दुराचार ही करता है; वह अभी सुखी परंतु मरणोपरांत दुःखी होता है क्योंकि वह अपाय गति को प्राप्त करता है।

* चौथे प्रकार का व्यक्ति तीसरे प्रकार जैसा हो काया, वाणी और मन से भी सदाचार ही करता है; वह अभी भी सुखी और मरणोपरांत भी सुखी ही होता है क्योंकि वह सुगति को प्राप्त होता है।

अपनी प्यारी दादी के गुजर जाने पर भावावेश में आये हुए कोसल-नरेश को भगवान ने समझाया कि कुम्हार के कच्चे-पक्के सभी घड़ों का एक-न-एक दिन फूटना अवश्यंभावी होता है; ठीक ऐसे ही सभी जीव मरणशील हैं, एक-न-एक

दिन उनका मरण अवश्य होता है। इसे दृष्टि में रखते हुए प्राणी पुण्य-कर्म करे जिससे परलोक सुधरे।

भगवान ने उसे यह भी समझाया कि दान उसे देना चाहिए जिसके लिए मन में श्रद्धा हो और दान का महाफल तब होता है जब शीलवान को दिया जाये, दुःशील को नहीं। उन्होंने उसे इस बात के लिए भी सचेत किया कि बुढ़ापा और मृत्यु हर किसी पर चढ़ते चले आ रहे हैं। इन्हें न हाथियों से, न रथों से, न पैदल, और न मंत्रों से, न धन से, अर्थात किसी भी प्रकार, जीता नहीं जा सकता। अतः समझदार व्यक्ति को चाहिए कि अपनी भलाई को देखते हुए बुद्ध, धर्म, संघ के प्रति सश्रद्ध हो।

## ४. मारसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत पच्चीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्ग

[सुत्त – तपोकम्म, हत्थिराजवण्ण, सुभ, पठममारपास,
दुतियमारपास, सप्प, सुपति, नन्दति, पठमआयु, दुतियआयु।]

पापी मार नाना प्रकार से भगवान को उल्टी मति देने का प्रयास करता है, परंतु उसे हर बार मुँह की खानी पड़ती है। उदाहरणतया, वह उन्हें तप-कर्म से विरत होने के कारण शुद्धि के मार्ग से गिरा हुआ बतलाता है, जिसपर भगवान उसे बतलाते हैं कि मुक्ति-लाभ के लिए सभी कठोर तपश्चरण बेकार होते हैं और मैंने शील, समाधि और प्रज्ञा को भावित कर परम शुद्धि को प्राप्त कर लिया है।

पापी मार बड़े विकराल रूप धारण करके भगवान को प्रभावित करने की चेष्टा करता है, परंतु हर बार उसका पर्दा फाश हो जाता है। एक अवसर पर भगवान उसे कहते हैं कि जो शरीर, वचन और मन से संयत रहते हैं, वे तुम्हारे चक्कर में नहीं आते। अन्य अवसर पर कहते हैं कि चाहे आकाश फट जाये, धरती चलायमान हो जाये, सभी प्राणी भयभीत हो उठें, कोई छाती में भाला घोंप दे, तो भी बुद्ध सांसारिक वस्तुओं में अपना बचाव नहीं खोजते।

एक बार भगवान भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे कि मनुष्यों की आयु कम होने से शीघ्र परलोक जाना होगा, अतः कुशल कर्म करना चाहिए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस पर पापी मार बोल उठा कि मनुष्यों की आयु लंबी है, सत्पुरुष इस बात से चिंतित न हो, वह दुधमुँहे बच्चे की तरह रहे, मृत्यु अभी नहीं आ रही है। भगवान ने इसका प्रतिकार करते हुए कहा कि मनुष्यों की आयु कम है, सत्पुरुष इस बात का खूब ध्यान रखे, वह ऐसे आचरण करे मानो सिर पर आग लगी हो, ऐसा नहीं है कि मृत्यु न आ रही हो।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर भगवान ने कहा कि मनुष्यों की आयु वैसे ही क्षीण होती जा रही है जैसे छोटी-छोटी नदियों का चढ़ा हुआ पानी।

## २. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – पासाण, किंसुसीह, सकलिक, पतिरूप, मानस, पत्त, छफस्सायतन, पिण्ड, कस्सक, रज्ज।]

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे। तब उन्हें विचलित करने के लिए पापी मार उनके पास ही बड़े-बड़े पत्थरों को लुढ़काने लगा। भगवान ने उसे पहचान लिया और कहा कि तू चाहे सारे गिज्झकूट पर्वत को ही क्यों न लुढ़का दे, सम्यक रूप से विमुक्त हुए बुद्धों में कोई चंचलता पैदा नहीं हो सकती। यह सुनकर पापी मार खिन्नमनस्क हो वहीं अंतर्धान हो गया।

मार ने और भी अनेक प्रकार से स्वयं भगवान की अथवा उनसे उपदेश ग्रहण करते हुए लोगों की मति फेरने का प्रयास किया परंतु उसका कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। कभी कभी वह भगवान को ललकारता –"आकाश में छा जाने वाले जाल के समान जो यह मन की उड़ान है, मैं तुम्हें उसमें फँसा लूंगा। श्रमण! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं है।" भगवान ने यह कहकर उसे निरुत्तर कर दिया –"मन को लुभाने वाले रूप, शब्द, गंध, रस और स्प्रष्टव्य – इनके प्रति मेरी इच्छाएं जाती रही हैं। अंतक! तुम मारे गये हो।"

एक बार पापी मार ने ऐसा प्रपंच रचा जिससे भगवान को बिना भिक्षा प्राप्त हुए खाली-हाथ वापस लौट आना पड़ा। तब भगवान को चिढ़ाने की गरज से उसने उनसे पूछा –"श्रमण! क्या भिक्षा मिली?" इस पर भगवान ने कहा – "जिनका अपना कुछ नहीं है, ऐसे हम सुखपूर्वक जीते हैं। हम (समाधि-जन्य) प्रीति को अपना भक्ष्य बनाएंगे, जैसे कि आभास्वर देव करते हैं।"

## ३. ततिय-वग्ग

[सुत्त – सम्बहुल, समिद्धि, गोधिक, सत्तवस्सानुबन्ध, मारधीतु।]

पापी मार ने भगवान के पास अप्रमत्त हो विहार करते कुछ भिक्षुओं को पुनः भोग-विलास का जीवन जीने के लिए उकसाया, परंतु इस कार्य में विफल रहा। ऐसे ही आयुष्मान समिद्धि के पास आकर बड़ा भयानक शब्द कर उन्हें विचलित करने लगा, परंतु यहां भी उसे असफलता ही हाथ लगी।

एक समय आयुष्मान गोधिक ने इसिगिलि के पास काळसिला पर अप्रमत्त हो विहार करते हुए अनेक बार चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया परंतु वह हर बार टूटती चली गयी, अंततः उन्होंने अपने आपको शस्त्र मार लेने की सोची। उनके

मन की बात जानकर पापी मार भगवान पर कटाक्ष करने लगा कि आपके शासन में रत कोई श्रावक बिना निर्वाण प्राप्त किये कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा? इसी बीच में आयुष्मान गोधिक ने शस्त्रघात कर लिया। भगवान ने मार से कहा कि गोधिक तृष्णा को जड़ से उखाड़ कर परिनिवृत्त हुए हैं।

पापी मार ने आयुष्मान गोधिक के विज्ञान की सभी दिशाओं-अनुदिशाओं में खोज की, पर वह कहीं भी नहीं मिला। तब वह भी मान गया कि सदा ध्यान-रत, धृति-संपन्न भिक्षु जीवन की इच्छा न करते हुए, उसकी सेना को जीत, पुनर्जन्म न ग्रहण कर, तृष्णा को जड़ से उखाड़ परिनिवृत्त हुआ है।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर मार ने मुँह की खायी और करुणस्वर में स्वयं की तुलना पत्थर पर झपटने वाले कौए से करते हुए भगवान को छोड़ भाग जाने की कामना की।

मार को चिंतित देख उसकी पुत्रियों –तण्हा, अरति तथा रगा –ने भी भगवान को लुभाने की भरसक चेष्टा की, परंतु वे भी पूर्णतया विफल रहीं। भगवान ने इन कन्याओं को ऐसे तितर-बितर कर दिया जैसे हवा रुई के फाहे को तितर-बितर कर देती है।

## ५. भिक्खुनीसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं, जिनके नाम हैं –आळविका, सोमा, किसागोतमी, विजया, उप्पलवण्णा, चाला, उपचाला, सीसुपचाला, सेला एवं वजिरा।

इस संयुत्त की सभी घटनाएं उस काल की हैं जब भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय जब आळविका, सोमा आदि भिक्षुणियां अन्धवन में दिवाविहार के लिए जातीं, तब पापी मार उन्हें अपने मार्ग से डिगाने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन देता अथवा डराता-धमकाता, परंतु हर बार अपने उद्देश्य में असफल रह जाने के कारण उसे खिन्नमनस्क होकर वहां से सरक जाना पड़ता।

उदाहरणतया –

पापी मार किसागोतमी को कहता है – "पुत्र की मृत्यु से शोकाकुल-सी, एकाकिनी, रोनी सूरत लिए, वन में अकेली पैठकर क्या किसी पुरुष की खोज में हो?"

किसागोतमी –"मैं पुत्र-मृत्यु के शोक से उबर चुकी हूं, पुरुष की खोज भी समाप्त हो चुकी है, न मैं शोक करती हूं, न रोती हूं, न ही मैं तुमसे डरती हूं।"

"संसार में स्वाद लेना छूट चुका है, अज्ञान का अंधकार विदीर्ण हो चुका है, मृत्यु की सेना को जीतकर अब मैं आस्रव-रहित हो विहार करती हूं।"

ऐसे ही पापी मार विजया भिक्षुणी को कहता है –"तुम नव-यौवना सुंदरी हो और मैं चढ़ती ऊम्रवाला युवा। आओ, हम पांच अंग वाले साज के साथ रमण करें।"

विजया भिक्षुणी –"हे मार! मैं लुभावने रूप, शब्द, गंध, रस और स्प्रष्टव्य तुम्हारे लिए छोड़ती हूं। मुझे अब इनसे कोई सरोकार नहीं है।"

"इस गंदगी से भरी हुई, टूटने वाली, अतीव भंगुर काया से मेरा मन हटा हुआ है, मैं इससे घृणा करती हूं, मेरी काम-तृष्णा जड़ से उखड़ चुकी है।"

सेला भिक्षुणी को मार डराता है –"किसने इस पुतले को खड़ा किया है? कौन है इसका सृजनहार? कहांसे है इसकी उत्पत्ति, और कहां है इसका निरोध?"

सेला भिक्षुणी –"न तो यह पुतला अपने आप खड़ा हो गया है; न इस जंजाल

को किसी दूसरे ने खड़ा किया है। हेतु के होने से यह हो गया है, हेतु का निरोध हो जाने से इसका निरोध हो जाता है।"

"जैसे कोई बीज खेत में बोने पर, वह पृथ्वी का रस और चिकनाई -इन दोनों को पाकर उग आता है, वैसे ही स्कंध, धातु और छः आयतनों का हेतु होने से यह अस्तित्व में आ गया है और हेतु के प्रणाश हो जाने पर इसका निरोध हो जाता है।"

वजिरा भिक्षुणी भी मार को दुत्कारती हुई कहती है – "'प्राणी!' – यह क्या कह रहे हो? तुम्हें गलतफ़हमी हो रही है। यह तो संस्कारों का पुंज-मात्र है। वस्तुतः 'प्राणी' कोई नहीं है।"

"जैसे अवयवों को मिला देने से 'रथ' शब्द जाना जाता है, वैसे ही पांच स्कंधों के मिलने से कोई 'प्राणी' समझ लिया जाता है।"

"दुःख ही उत्पन्न होता है, दुःख ही रहता है और चला जाता है, दुःख को छोड़ और कुछ पैदा नहीं होता, और दुःख को छोड़ और किसी का निरोध भी नहीं होता है।"

## ६. ब्रह्मसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत पंद्रह सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्ग

[सुत्त – ब्रह्मायाचन, गारव, ब्रह्मदेव, बक ब्रह्म, अञ्ञतरब्रह्म,
ब्रह्मलोक, कोकालिक, कतमोदकतिस्स, तुरूब्रह्म, कोकालिक।]

प्रथम सुत्त में बतलाया गया है कि बुद्धत्व लाभ करने के पश्चात भगवान के मन में यह वितर्क उठा कि मैंने तो गंभीर, दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय, शांत, प्रणीत, तर्क से अप्राप्य, निपुण तथा पंडितों द्वारा जानने योग्य धर्म को पा लिया है, परंतु कामभोगों में रत जनता द्वारा इसे ग्रहण कर पाना संभव नहीं हो पायगा। इस प्रकार उनका चित्त धर्म-देशना की बजाय अल्पोत्सुकता की ओर झुक गया। तब सहम्पति ब्रह्मा ने उनके मन की बात जानकर उन्हें यह कहकर धर्म-देशना के लिए प्रेरित किया कि संसार में अल्प मल वाले प्राणी भी हैं जो धर्म को न सुनने से नष्ट हो जायेंगे। भगवान ने भी बुद्ध-नेत्र से लोक को निहारा और इसे सही पाया। फिर उन्होंने ब्रह्मा से कहा –"कान वालों के लिए अमृत का द्वार खुल गया है। वे अपनी-अपनी श्रद्धा जगायें।

ऐसे ही भगवान के मन में यह भाव भी जागा कि मैं किस श्रमण अथवा ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान, उसका मान-सत्कार करता हुआ विहार करूं? तब उन्हें लगा कि अपरिपूर्ण शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति अथवा विमुक्ति-ज्ञानदर्शन की पूर्ति के लिए ही ऐसा करना होता है, परंतु किसी भी लोक में शील आदि में मुझसे अधिक संपन्न कोई प्राणी नहीं है। अतः उन्होंने यही उचित समझा कि मैं अपने द्वारा अभिसंबुद्ध धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसी का मान-सत्कार करता हुआ विहार करूं। तभी सहम्पति ब्रह्मा ने भी प्रकट होकर कहा कि पहले भी सकल संबुद्ध धर्म को ही ज्येष्ठ मानकर विहार करते थे, वे आगे भी ऐसा ही करेंगे, आप भी ऐसा ही करें।

एक अन्य अवसर पर सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहकर एक ब्राह्मणी के मन में संवेग उत्पन्न किया कि तुम ब्रह्म-मार्ग को जाने बिना मुझे प्रतिदिन आहुति क्यों देती रहती हो? यह आहुति तो तुम्हें अपने प्रब्रजित पुत्र को देनी चाहिए जो कि अरहंत अवस्था प्राप्त कर, देवताओं से भी बढ़ा-चढ़ा, भिक्षा पाने के लिए तुम्हारे द्वार पर आया है।

बक नामक ब्रह्मा को यह पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई कि यह ब्रह्मा का जीवन नित्य, ध्रुव, शाश्वत, केवल, अच्यवनधर्मा है; न यहां कुछ पैदा होता है, न मरता है, इत्यादि; और न इससे परे निकलने का कोई रास्ता है। भगवान ने अपने चित्त से उसके वितर्क को जानकर उसे समझाया कि तुम अविद्या में पड़े हो जो अनित्य को नित्य, अध्रुव को ध्रुव, अशाश्वत को शाश्वत और ऐसे ही आगे से आगे मिथ्या धारणा का पोषण किये जा रहे हो। मैं जन्म, मृत्यु और शोक का अतिक्रमण किये हुए अनंतदर्शी हूं और तुम्हारी आयु को भी जानता हूं। तत्पश्चात बक ब्रह्मा के पूछने पर उन्होंने उसे उसके पहले के शील-व्रतों के बारे में भी बतलाया।

ऐसे ही एक अन्य ब्रह्मा को यह पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई कि ऐसा कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण नहीं है जो वहां तक पहुँच पाये। परंतु जब न केवल भगवान बुद्ध, बल्कि एक-एक करके उनके श्रावक महामोग्गल्लान, महाकस्सप, महाकप्पिन और अनुरुद्ध भी, अग्निधातु का आश्रय लेकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हो पालथी मार कर बैठ गये, तब उस ब्रह्मा की पाप-दृष्टि विखंडित हुई। बाद में उसे पता चला कि भगवान के बहुत से अरहंत-अवस्था-प्राप्त श्रावक हैं, जो इसी प्रकार ऋद्धि-संपन्न हैं।

सुब्रह्मा और सुद्धावास नाम के दो प्रत्येक ब्रह्मा किसी ब्रह्मलोक के ब्रह्मा को प्रमादी जान उसे संवेग दिलाने की दृष्टि से उस ब्रह्मलोक में जा प्रकट हुए। वहां सुब्रह्मा ने उस ब्रह्मा के ऋद्धिबल से भी ऊंचा ऋद्धिबल प्रदर्शित कर उसका मान-मर्दन किया। फिर उसे यह भी बतलाया कि हम और आप से भगवान ऋद्धि और प्रताप में कहीं बढ़-चढ़ कर हैं। किसी अन्य काल में यही ब्रह्मा भगवान की सेवा में गया।

अन्य अवसरों पर सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा ने किन्हीं भिक्षुओं को दृष्टि में रखते हुए इस आशय की गाथाएं कहीं कि जिसे मापा नहीं जा सकता, उसे मापने वाले को मैं पृथग्जन कहता हूं।

एक बार कोकालिक नाम का भिक्षु भगवान के समक्ष आयुष्मान सारिपुत्त और महामोग्गल्लान को पापेच्छ बतलाने लगा। इस पर भगवान ने उसे कहा कि वे दोनों बहुत अच्छे हैं, उनके प्रति मन में श्रद्धा जगाओ। परंतु बार-बार समझाने पर भी वह नहीं माना और वहां से चला गया। उसके कुछ समय पश्चात उसके शरीर पर फफोले उठने लगे जो आकार में बढ़ते चले गये। अंततः ये फूट गये

और इसी से उसकी मृत्यु हो गयी। आयुष्मान सारिपुत्त और महामोग्गल्लान के प्रति मन में दुर्भावना लाने से वह पद्म नाम के नरक में उत्पन्न हुआ। भगवान ने कहा कि पुरुष के जन्म के साथ ही उसके मुख में कुल्हाड़ी भी पैदा होती है जिससे बुरे वचन बोलता हुआ मूर्ख अपने आप को ही काटा करता है। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि कोई बुद्धों के प्रति मन में मैल जगाये।

## २. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – सनङ्कुमार, देवदत्त, अन्धकविन्द, अरुणवती, परिनिब्बान।]

ब्रह्मा सनङ्कुमार ने भगवान के सान्निध्य में कहा –"गोत्र का विचार करनेवालों के लिए मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है, और देवों तथा मनुष्यों में विद्या और आचरण से संपन्न (बुद्ध) श्रेष्ठ होता है।"

सहम्पति ब्रह्मा ने देवदत्त के विषय में कहा –"केले का अपना ही फल केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है, वेणु को भी, नरकट को भी।"

इसी ब्रह्मा ने दूर, एकांत स्थान में वास करते हुए बंधन-मुक्त जीवन बिताने के बारे में गाथा भी कही।

भगवान ने भिक्षुओं को सम्यक संबुद्ध सिखी के समय की एक घटना सुनायी जिसके अनुसार उनके अग्र-श्रावक अभिभू ने उनके साथ एक ब्रह्मलोक में जाकर वहां के ब्रह्मा और ब्रह्मपार्षदों को धर्मोपदेश कर खूब संवेग दिलाया। उनका यह नाद उसी ब्रह्मलोक में नहीं, बल्कि सहस्र लोकों में गुंजायमान हुआ – "उत्साह करो, घर छोड़कर बाहर निकलो, बुद्ध की शिक्षा में लग जाओ। मृत्यु की सेना को वैसे ही तितर-बितर कर दो जैसे हाथी फूस की झोंपड़ी को। जो इस धर्मविनय में अप्रमत्त होकर विहार करेगा, वह संसार के आवागमन को छोड़ अपने दुःखों का अंत कर लेगा।"

अंतिम सुत्त में भगवान के परिनिर्वाण के समय उनके द्वारा भिक्षुओं को दिये गये उनके अंतिम उपदेश का उल्लेख है –"सभी संस्कार अनित्य हैं। प्रमादरहित होकर इस सच्चाई का संपादन करो।" तदनंतर उनके परिनिर्वाण और परिनिवृत्त होने पर सहम्पति ब्रह्मा, देवेंद्र सक्क (शक्र) आदि द्वारा कही गयी गाथाओं का उल्लेख है। आयुष्मान अनुरुद्ध ने कहा कि जैसे मशाल बुझ जाती है वैसे ही उनके चित्त की विमुक्ति हो गयी है।

## ७. ब्राह्मणसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित हैं, जिनके अंतर्गत बाईस सुत्त हैं।

### १. अरहन्त-वग्ग

[सुत्त - धनञ्जानी, अक्कोस, असुरिन्दक, बिलङ्गिक, अहिंसक, जटा, सुद्धिक, अग्गिक, सुन्दरिक, बहुधीतरा]

एक समय धनञ्जानी नाम की ब्राह्मणी ने भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के लिए भोजन परोसते हुए तीन बार उदान के ये शब्द कहे –"उन अर्हत-अवस्था-प्राप्त सम्यक संबुद्ध भगवान को नमस्कार हो!"

ब्राह्मण को यह वचन अच्छे नहीं लगे, परंतु ब्राह्मणी के कहने पर वह भगवान से मिलने चला गया। वहां पहुँच कर उसने उनसे पूछा –"किसका नाश कर कोई सुख से सोता है? किसका नाश कर शोक नहीं करता है? किस एक वस्तु का वध करना आपको अच्छा लगता है?"

भगवान ने कहा –"क्रोध का नाश कर सुख से सोता है, क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता है, विष-मूलक क्रोध का वध करना आर्यों द्वारा प्रशंसित है।"

भगवान के वचन सुनकर ब्राह्मण भावविभोर होकर उनकी शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी। फिर उनके पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाकर और अप्रमत्त हो ध्यान करते हुए वह अरहंत अवस्था को प्राप्त हुआ।

भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के भगवान के पास प्रव्रजित होने की बात सुनकर अक्कोसक, असुरिन्दक तथा बिलङ्गिक-भारद्वाज ब्राह्मण भी कुपित होकर भगवान के पास जा पहुँचे, परंतु वहां उनकी आर्य-वाणी सुनकर उन्हीं की शरण चले गये, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी। समय आने पर इन तीनों ने भी अरहंत अवस्था प्राप्त की।

ऐसे और भी अनेक अवसर आये जबकि इस वर्ग के लोग भगवान के संपर्क में आकर, अप्रमत्त हो ध्यान करते हुए, अरहंत अवस्था को प्राप्त हुए।

भगवान द्वारा इन्हें दिये गये धर्मोपदेशों के कुछ अंश –

–जो काया, वाणी और चित्त से हिंसा नहीं करता, वही 'अहिंसक' होता है।

–शील में प्रतिष्ठित, प्रज्ञावान पुरुष ही, समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हुए सब प्राणियों को उलझाए रखने वाली इस अंदर-बाहर की जटा को सुलझा सकता है।

–अध्यवसायी, संयमी, नित्य दृढ पराक्रम करनेवाला क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल अथवा पुक्कुस परम शुद्धि को प्राप्त कर लेता है।

–विशिष्ट-ज्ञान-प्राप्त मुनि द्वारा पूर्वजन्मों को जानना, स्वर्ग और अपाय को देखना, और जन्म का क्षय प्राप्तकर लेना – इन तीन विद्याओं से कोई ब्राह्मण 'त्रैविद्य' होता है।

–हे ब्राह्मण! मैं लकड़ियां जलाना छोड़ अपने भीतर ज्योति जलाता हूं। मेरी आग सदा जलती रहती है। मैं नित्य-समाहित, ब्रह्मचारी और अरहंत हूं।

अंतिम सुत्त में बतलाया गया है कि चौदह बैल गुम हो जाने से उनकी तलाश करता हुआ कोई भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण जंगल में आ निकला। वहां उसने भगवान को पालथी मार, शरीर सीधा किये हुए, स्मृतिमान हो सुखपूर्वक बैठे देखा। तब उसने अनुमान लगाया कि यह व्यक्ति क्यों सुखी होगा। इसके लिए उसने गाथाएं कहीं। भगवान ने उन गाथाओं का अनुमोदन किया।

## २. उपासक-वग्ग

[सुत्त – कसिभारद्वाज, उदय, देवहित, महासाल, मानत्थद्ध, पच्चनीक, नवकम्मिक, कट्ठहार, मातुपोसक, भिक्खक, सङ्गारव, खोमदुस्स।]

एक समय भगवान भिक्षा के लिए कसिभारद्वाज ब्राह्मण के घर पहुँचे। उन्हें देखकर वह बोला – "श्रमण! मैं जोत-बोकर खाता हूं। तुम भी जोत-बोकर खाओ।" इस पर भगवान ने कहा –"ब्राह्मण! मैं भी जोत-बोकर खाता हूं।" जब कसिभारद्वाज ने कहा कि मुझे तो आपकी खेती दिखायी नहीं देती, तब उन्होंने उसे बतलाया कि मैं अमृत उपजाने वाली खेती करता हूं जिसमें श्रद्धा बीज, तप वर्षा, प्रज्ञा हल और इसी प्रकार के अन्य खेती के साधन होते हैं। इस खेती को करने से कोई भी सारे दुःखों से छूट जाता है।

यह सुनकर कसिभारद्वाज ने भगवान को भोजन करने के लिए कहा, परंतु उन्होंने प्रत्युत्तर दिया कि धर्मोपदेश करने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला भोजन मैं स्वीकार नहीं करता। अन्न-पान से किसी दूसरे क्षीणास्रव महर्षि की सेवा करो और पुण्य कमाओ।

ऐसा कहे जाने पर भाव-विभोर हो कसिभारद्वाज भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

ऐसे ही अन्य अनेक प्रकरणहैं जिनमें भगवान के संपर्क में आने वाले ब्राह्मण उनके वचनों से प्रभावित होकर उनकी, तथा धर्म और भिक्षुसंघ की भी, शरण चले गये।

ऐसे व्यक्तियों को भगवान द्वारा कहे गये वचनों के कुछ अंश –

* ये कामबार-बार होते हैं, जैसे बीज बोना, वर्षा होना, खेत जोतना, उपज होना, दान मांगना, दान देना, दान देने से स्वर्ग-लाभ करना, मूर्ख का गर्भ में पड़ना, जन्मना, मरना, श्मशान ले जाया जाना, इत्यादि; परंतु पुनर्भव प्राप्त न कराने वाला मार्ग पाकर महाप्रज्ञावान बार-बार जन्म ग्रहण नहीं करता।

* दान देने वाला ऐसे व्यक्ति कोदान दे जो पूर्वजन्मों काजानकार,स्वर्ग तथा अपाय का देखनहार और जन्म काक्षय प्राप्त कियेहुए हो। उसे दिया हुआ दान बड़ा फलप्रद होता है।

* माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता और आचार्य के प्रति अभिमान न करे। इनके प्रति गौरव-भाव रखे, इनका सम्मान करे, इनकी पूजा करना अच्छा है।

* जो धर्मपूर्वक भिक्षाटन करमाता-पिता कापोषण करताहै, वह बहुत पुण्य कमाताहै। इससे वह यहां भी प्रशंसित होता है और मरणोपरांत स्वर्ग में प्रमुदित होता है।

* भिक्षा मांगने मात्र से कोईभिक्षु नहीं हो जाता। जो इस संसार के पुण्य और पाप बहाकरज्ञानपूर्वक सच्चे ब्रह्मचर्य कापालन करताहै, वही वास्तव में 'भिक्षु' कहलाता है।

* 'धर्म' जलाशय है, और निर्मल, सज्जनों द्वारा प्रशस्त 'शील' उसका घाट। वेदनाओं के जानकार इसमें स्नान करकेपवित्र गात्र वाले होकर तैरकर पार चले जाते हैं।

* वह सभा नहीं होती जिसमें संत न हों; वे संत नहीं होते जो धर्म कीबात न बोलें; राग, द्वेष और मोह कोत्यागकर धर्म कीबात बोलने वाले ही संत होते हैं।

इन सुत्तों में एक ऐसा प्रकरणभी है जिसमें एक बूढ़े ब्राह्मण कोउसके पुत्रों ने घर से बाहर निकाल दिया था। भगवान से संपर्क होने पर उन्होंने उसे कुछ गाथाएं बतलाईं और कहाकि बहुत लोगों के जमा होने पर पुत्रों के वहां होते हुए

वह इन्हें पढ़े। इन गाथाओं में घर से निकाले गये और दर-दर भीख मांगते बूढ़े बाप का बड़ा ही करुण चित्रण है। इसमें नालायक बेटों की अपेक्षा बूढ़े बाप के डंडे को ही कहीं अच्छा बतलाया गया है जो भड़के बैल को भगा देता है और खूंखार कुत्ते को भी, अंधकार में आगे-आगे चलता है, गहराई की थाह लगाता है और फिसल जाने पर गिरने से बचाता है।

वृद्ध ब्राह्मण ने यही किया जिस पर उसके पुत्रों ने उसे घर ले जाकर, स्नान करवा, प्रत्येक ने उसे कपड़ों का जोड़ा भेंट किया।

## ८. वङ्गीससंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – निक्खन्त, अरति, पेसल, आनन्द, सुभासित, सारिपुत्त, पवारणा, परोसहस्स, कोण्डञ्ञ, मोग्गल्लान, गग्गरा एवं वङ्गीस।

इन सुत्तों में आयुष्मान वङ्गीस के क्रिया-कलापोंको निबद्ध किया गया है। कुछ अवसरों पर चित्त में जोरों से राग जागने पर वह इसे स्वयं के प्रयासों से शांत करने में सफल हुए। एक अवसर पर उन्होंने इसके लिए आयुष्मान आनन्द से उपाय पूछा। कुछ अवसरों पर उन्होंने उचित प्रसंग देखकर भगवान बुद्ध तथा आयुष्मान सारिपुत्त, अञ्ञाकोण्डञ्ञ तथा महामोग्गल्लान की स्तुति की।

आयुष्मान वङ्गीस की गाथाओं के कुछ अंश निम्न प्रकार से हैं –

* मैंने अपने कानोंसे बुद्ध को बताते सुना है कि निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग क्या है, मेरा मन अब वहीं बँध गया है।

* जो पृथग्जनों की साठ मिथ्या धारणाओं में नहीं पड़ता और न फूहड़पनेकी बातें करता है, वही भिक्षु है।

* उसी वाणी को बोले जिससे न अपने को संताप हो, न दूसरे को कष्ट –यही वाणी 'सुभाषित' होती है।

* जैसे मेघरहित आकाश में चंद्रमा अपने निर्मल प्रकाशसे शोभायमान होता है, हे बुद्ध! आप महामुनि भी उसी प्रकार अपने यश से सारे लोक में अत्यंत शोभायमान हो रहे हैं।

अंतिम सुत्त में आयुष्मान वङ्गीस की उन गाथाओं को निबद्ध किया गया है जबकि वह थोड़े ही समय पूर्व अरहत्वपद प्राप्तकर विमुक्ति का सुख अनुभव कर रहे थे। इन गाथाओं में उन्होंने व्यक्त किया है कि मैं पहले कविता करते हुए गांव-गांव, नगर-नगर घूमता-फिरता था, परंतु बुद्ध का धर्मोपदेश सुनकर मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया और अरहत्व-लाभ किया।मुझे बुद्ध से तीन विद्याएं प्राप्त हुई हैं –पूर्वजन्मों का ज्ञान, विशुद्ध दिव्य चक्षु और परचित्तज्ञान। मैंने बुद्ध की शिक्षा को पूरा कर लिया है।

## ९. वनसंयुत्त

इस संयुत्त में चौदह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – विवेक, उपट्ठान, कस्सपगोत्त, सम्बहुल, आनन्द, अनुरुद्ध, नागदत्त, कुलघरणी, वज्जिपुत्त, सज्झाय, अकुसलवितक्क, मज्झन्हिक, पाकतिंद्रिय एवं गन्धत्थेन।

इन सुत्तों में भिक्षुओं को कोसल अथवा वेसाली के वनखंडों में विहार करते हुए बतलाया गया है। इसमें से कई भिक्षुओं की किसी-न-किसी प्रकार की शिथिलता को देखकर वनदेवता उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करते हैं। जैसे –

* पापपूर्ण अकुशल वितर्कों को मन में लाते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर सचेत करता है कि तुम स्मृतिमान हो, मन के मोह को छोड़ो।

* दिन में सोते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर सजग बनाता है कि तुम्हें सोने से क्या मतलब? बाण लगने से छटपटाते हुए बेचैन व्यक्ति को भला नींद कैसी?

* एक निपट-मूर्ख को धर्मोपदेश देते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर सावधान करता है कि इसे तो दस मशाल दिखायें तो भी यह रूपों को नहीं देख सकता, क्योंकि इसके पास आँख नहीं है।

* गृहस्थों से घिरे रहने वाले भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर होश में लाता है कि तुम ध्यान करो, इस चहल-पहल से तुम्हें क्या मिलने वाला है?

* पुष्करिणी में पैठकर एक कमल को चोरी-चोरी सूंघते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे 'गंध-चोर' की संज्ञा देकर सचेत करता है।

इसके विपरीत कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जिनमें भिक्षु लोग देवताओं के मति-विभ्रम को दूर करते हैं। जैसे –

* एक देवता द्वारा त्रयस्त्रिंश देवलोक की सुख-समृद्धि का बखान किये जाने पर भिक्षु उसका ध्यान अरहंतों के कथन की ओर दिलाता है – "सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पाद और व्यय स्वभाव वाले हैं, ये उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध होते जाते हैं। इस प्रकार इनका पूरी तरह उपशमन हो जाना ही (वास्तविक) सुख होता है।"

* एक वनदेवता भिक्षु के पास आकर कहता है – "इस भरी दोपहर में जब पक्षी घोंसलों में घुस गये हैं और यह महारण्य सांय-सांय कर रहा है, मुझे डर लगता है।" भिक्षु से उसे प्रत्युत्तर मिला –"इस भरी दोपहर में जब पक्षी घोंसलों में घुस गये हैं और यह महारण्य सांय-सांय कर रहा है, मुझे आनंद आता है ।"

## १०. यक्खसंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – इन्दक, सक्क नाम, सूचिलोम, मणिभद्द, सानु, पियङ्कर, पुनब्बसु, सुदत्त, पठमसुक्का, दुतियसुक्का, चीरा एवं आळवक।

इन सुत्तों में यक्षों यक्षिणियों के विविध प्रसंग हैं –

कोई-कोईयक्ष भगवान से तरह-तरह के प्रश्न पूछकर उनका समाधान प्राप्त करते हैं, यथा –

रूप जीव नहीं है, तो यह शरीर कैसे पाता है?

यह अस्थिपिंड कहां से आता है?

राग और द्वेष कैसे पैदा होते हैं?

अरुचि, रुचि और भय से रोंगटे खड़े हो जाना – इनका क्या कारण है?

पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है?

कोई व्यक्ति कैसे परिशुद्ध हो जाता है? इत्यादि।

एक यक्ष भगवान से कहता है कि विमुक्ति-प्राप्त श्रमण के लिए दूसरों को उपदेश देना उचित नहीं है। भगवान ने कहा कि वह अनुकंपावश ऐसा करता है। ऐसा करना उसके लिए बंधनकारक नहीं होता।

एक यक्ष अर्हतों से सुनी हुई बात दोहराता है कि उपोसथ व्रत रखने वालों और ब्रह्मचर्य पालने वालों के साथ यक्ष लोग छेड़छाड़ नहीं करते।

कुछ यक्षिणियां अपने पुत्रों को चुप कराती हुई बतलायी गयी हैं जिससे कि वे धर्म को सुन सकें। एक यक्षिणी की भावाभिव्यक्ति है कि संसार में अपना पुत्र प्यारा होता है, अपना पति प्यारा होता है, परंतु मुझे इस धर्म की खोज उससे भी बढ़कर प्यारी लगती है।

अनाथपिण्डिक गृहपति द्वारा भगवान के प्रथम दर्शन के लिए जाते समय जब जब वह घबराता है, तब-तब सिवक नामक यक्ष उसको यह कहकर प्रोत्साहित करता है, "आगे बढ़ो, गृहपति! तुम्हारा आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर है, पीछे हटना नहीं।"

एक समय सुक्का भिक्षुणी राजगह में एक बड़ी सभा में धर्मोपदेश कर रही थी, तब एक यक्ष उसके उपदेश से अत्यंत संतुष्ट हो सड़क-सड़क, चौराहा-चौराहा घूमकर लोगों को यह गाथा बोलते बतलाया गया है –"राजगह के लोगो! क्या तुम मद्य पीकर सो रहे हो जो अमृत-पद का बखान करने वाली सुक्का का उपदेश नहीं सुन रहे हो?"

## ११. सक्क संयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनमें पच्चीस सुत हैं।

### १. पठम-वग्ग

[सुत्त – सुवीर, सुसीम, धजग्ग, वेपचित्ति, सुभासितजय,
कुलावक, नदुब्भिय, वेरोचनअसुरिन्द, अरञ्ञायतनइसि,
समुद्दक।]

इन सुत्तों में अधिकांश प्रकरण देवासुर संग्राम से संबंधित हैं। दो प्रकरणों में सुवीर और सुसीम नाम के देवपुत्रों के समक्ष देवेंद्र सक्क (शक्र) निर्वाण के मार्ग की प्रशंसा करता है। भगवान भी भिक्षुओं को इससे प्रेरणा पाकर अप्राप्त की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने के लिए कहते हैं।

त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को देवेंद्र ने परामर्श दिया कि यदि तुम्हें रणभूमि में भय लगने लगे तो मेरे, अथवा प्रजापति, अथवा वरुण, अथवा ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करो, इससे तुम्हारा भय जाता रहेगा। भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि इससे कइयों का भय जा भी सकता था और कइयों का नहीं भी, क्योंकि देवेंद्र सक्क स्वयं अवीतराग, अवीतद्वेष, अवीतमोह, भीरु, स्तब्ध हो जाने वाला और घबड़ाकर भाग जाने वाला था। परंतु यदि ध्यान करते समय तुम्हें कभी भय लगे तो तुम बुद्ध, धर्म, अथवा संघ का स्मरण करो। इससे तुम्हारा सारा भय चला जायगा, क्योंकि तथागत वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, अभीरु, स्तब्ध न होने वाले और घबड़ाकर पलायन न करने वाले होते हैं।

एक बार देवासुर संग्राम में असुरों के पराजित हो जाने पर देवों द्वारा असुरेंद्र वेपचित्ति को बांधकर सुधर्मा सभा में देवेंद्र सक्क के पास ले जाया गया। उस समय वह बड़े असभ्य और कठोर वचन बोल रहा था, परंतु देवेंद्र सक्क ने शांत बने रहकर अपनी अपूर्व सहिष्णुता का परिचय दिया। भगवान ने भिक्षुओं को भी सहिष्णुता और विनम्रता का अभ्यासी होने के लिए कहा।

एक अन्य अवसर पर असुरेंद्र वेपचित्ति और देवेंद्र सक्क के मध्य 'सुभाषित' बोलने की होड़ लगी। इसके लिए निर्णायक भी चुने गये। दोनों ओर से गाथाएं

कही जाने पर निर्णायकों ने निर्णय दिया कि असुरेंद्र द्वारा कही गयी गाथाएं लड़ाई, झगड़ा या फसाद बढ़ाने वाली हैं, जबकि देवेंद्र द्वारा कही गयी गाथाएं इसके विपरीत हैं, अतः सुभाषित कहने के कारण देवेंद्र विजयी हैं। भगवान ने भी भिक्षुओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

एक समय कुछ शीलवंत और कल्याणधर्मा ऋषि असुरों से भय की आशंका देखकर असुरेंद्र सम्बर से अभय-दक्षिणा मांगने के लिए गये, परंतु उसने उनको दक्षिणा में भय ही दिया। इस पर ऋषियों ने उसे भी शाप दिया कि तुम्हारा भय भी कभी न मिटे। तुम जैसा बीज बो रहे हो, वैसा ही फल पाओगे।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि उन ऋषियों के शाप से असुरेंद्र सम्बर रात में तीन बार चिहुँक उठता है।

## २. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – वतपद, सक्क नाम, महालि, दलिद्द, रामणेय्यक, यजमान, बुद्धवन्दना, गहट्ठवन्दना, सत्थारवन्दना, सङ्घवन्दना।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि देवेंद्र सक्क अपने मनुष्य-जीवन में किन सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके कारण वह इंद्र-पद पर आरूढ़ हुआ। उन्होंने उनको यह भी बतलाया कि उसके 'मघवा', 'पुरिन्दद', 'सक्क' आदि नाम कैसे पड़े।

पूर्वकाल में राजगह के एक नीच कुलका दरिद्र व्यक्ति तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म में श्रद्धावान होकर शील, विद्या, त्याग और प्रज्ञा का अभ्यास कर मरणोपरांत त्रयस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हुआ। चूंकि वह अन्य देवों से वर्ण और यश में बढ़ा-चढ़ा था, अतः वहां के देव उससे कुढ़ते थे। यह देख देवेंद्र सक्क ने उन देवों को समझाया कि जिसकी तथागत में अचल श्रद्धा हो, शील शुभ हो, संघ के प्रति गौरव का भाव हो, और समझ सीधी हो, उसे दरिद्र नहीं कहसकते। वह सार्थक जीवन वाला होता है।

एक बार देवेंद्र सक्क ने भगवान से यह जानना चाहा कि कौन-सा स्थान रमणीय होता है। इस पर उन्होंने कहा कि गांव हो या जंगल, स्थल नीचा हो या समतल, जहां अरहंत विहार करते हैं वही स्थान रमणीय होता है। उन्होंने यह भी समझाया कि बुद्ध की वंदना कैसे करनी चाहिए।

इन सुत्तों में तीन प्रकरण ऐसे हैं जिनमें देवेंद्र सक्क को अपने वेजयन्त प्रासाद

से उतरते हुए या तो सभी दिशाओं को, अथवा भगवान बुद्ध को, अथवा भिक्षुसंघ को नमस्कार करते हुए बतलाया गया है। इस बारे में सारथि मातलि द्वारा पूछे जाने पर वह कहता है –

* मैं उनको नमस्कार करता हूं जो शीलसंपन्न हैं, चिरकाल से समाहित हैं, सम्यक रूप से प्रव्रजित हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, पुण्य कार्यों में लगे हुए गृहस्थ हैं, शीलवंत उपासक हैं और धर्मपूर्वक भार्या का पोषण करते हैं।

* मैं नमस्कार करता हूं इस समय के सम्यक संबुद्ध अनोम नामक शास्ता को; राग, द्वेष एवं अविद्या रहित क्षीणास्रव अरहंतों को; और राग, द्वेष को दूर कर, अविद्या का अतिक्रमण कर, प्रमादरहित हो निर्वाण पथ की ओर अग्रसर शैक्ष्यों को।

* मैं नमस्कार करता हूं उन प्रव्रजितों को जो कुछ संग्रह करके नहीं रखते, जो कुछ दूसरों से मिल जाये उसी से गुजारा करते हैं, अच्छी मंत्रणा करते हैं और धैर्यवान, शांत, समतापूर्ण आचरण वाले, विरोधियों के अविरोधी, हिंसा त्यागे हुए तथा अनपेक्षी होते हैं।

### ३. ततिय-वग्ग

[सुत्त – छेत्वा, दुब्बण्णिय, सम्बरिमाया, अच्चय, अक्कोध।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि पूर्वकाल में कोई बदरूप यक्ष देवेंद्र सक्क के आसन पर जा बैठा। यह देख त्रयस्त्रिंश लोक के देव कुढ़ने लगे। जितना वे कुढ़ते, उतना ही वह सुंदर होता जाता।

देवों ने यह बात देवेंद्र को बतायी और जानना चाहा कि क्या यह कोई क्रोध-भक्ष यक्ष है?

तब देवेंद्र सक्क ने उस यक्ष के समीप जाकर अपने दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक और उसकी ओर हाथ जोड़कर तीन बार अपना नाम कह सुनाया। जैसे-जैसे सक्क अपना नाम सुनाता गया वैसे-वैसे यक्ष बदरूप होता चला गया और अंततः अंतर्धान हो गया।

तब देवेंद्र ने अपने आसन पर बैठकर देवगण से कहा –"मुझे क्रोध किये बहुत समय हो गया है। मुझमें अब क्रोध टिका हुआ नहीं है।"

एक बार भगवान ने भिक्षुओं को समझाया –

"मूर्ख दो प्रकार के होते हैं –

(१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखते, और (२) जो दूसरे द्वारा अपराध स्वीकार कर लिए जाने पर उसे क्षमा नहीं करते।

ऐसे ही पंडित भी दो प्रकार के होते हैं –

(१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर देख लेते हैं, और (२) जो दूसरे द्वारा अपराध स्वीकार कर लिए जाने पर उसे क्षमा कर देते हैं।"

अंतिम सुत्त में देवेंद्र सक्क द्वारा कही गयी एक गाथा का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार क्रोध करने वाले पर क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध पापी व्यक्ति को पर्वत के समान चूर-चूर कर देता है।

# निदानवग्ग

## १. निदानसंयुत्त

यह संयुत्त नौ वर्गों में विभाजित है जिनमें एक सौ तीन सुत्त हैं।

### १. बुद्ध-वग्गो

[सुत्त – पटिच्चसमुप्पाद, विभङ्ग, पटिपदा, विपस्सी, सिखी,
वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप, गोतम।]

भगवान ने भिक्षुओं कोसमझाया कि 'पटिच्चसमुप्पाद' (प्रतीत्यसमुत्पाद) क्या होता है? अविद्या के कारणसंस्कार,संस्कारके कारणविज्ञान, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण छः इंद्रियां, छः इंद्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म से कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार 'समस्त दुःखसमूह' की उत्पत्ति होती है । यही होता है –'प्रतीत्यसमुत्पाद'।

फिर कहा कि अविद्या के निरोध से संस्कार, संस्कार के निरोध से विज्ञान, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप, नाम-रूप के निरोध से छः इंद्रियां, छः इंद्रियों के निरोध से स्पर्श, स्पर्श के निरोध से वेदना, वेदना के निरोध से तृष्णा, तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास –सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार समस्त दुःखों का निरोध हो जाता है।

भगवान ने 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का विभाग करके भी समझाया कि अविद्या, संस्कार,विज्ञान, नाम-रूप आदि से क्या आशय लिया जाता है। उन्होंने यह भी बतलाया कि जिस पूर्व-वर्णित क्रम से 'समस्त दुःखसमूह' की उत्पत्ति होती है, वह 'मिथ्या मार्ग' कहलाता है, और जिस क्रम से समस्त दुःखों का निरोध हो जाता है, उसे 'सम्यक मार्ग' कहते हैं।

उन्होंने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि उनके पूर्ववर्ती सम्यक संबुद्धों – विपस्सी, सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध,कोणागमन तथा कस्सप –और उन्हें स्वयं भी 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हुआ।

## २. आहार-वग्गो

[सुत्त – आहार, मोळियफग्गुन, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, कच्चानगोत्त, धम्मकथिक, अचेलकस्सप, तिम्बरुक, बालपण्डित, पच्चय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आहार चार प्रकार का होता है – १. कौर वाला (स्थूल या सूक्ष्म), २. स्पर्श, ३. मन की चेतना, और ४. विज्ञान। इन आहारों का निदान है तृष्णा, और तृष्णा का वेदना, वेदना का स्पर्श, स्पर्श का छः इंद्रियां, छः इंद्रियों का नामरूप, नामरूप का विज्ञान, विज्ञान का संस्कार, संस्कार का अविद्या। इस प्रकार अविद्या 'समस्त दुःख-समूह' का मूल कारण है और इसके अशेष निरोध से सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

आयुष्मान मोळियफग्गुन ने भगवान से पूछा कि कौन विज्ञान का आहार करता है, कौन स्पर्श करता है, कौन वेदना का अनुभव करता है, कौन तृष्णा करता है, कौन उपादान करता है? भगवान ने कहा कि ये प्रश्न असंगत हैं, मैं ऐसा नहीं कहता हूं। संगत प्रश्न तो ये हो सकते हैं –विज्ञान आहार से क्या होता है, क्या होने से स्पर्श होता है, किसके होने से वेदना होती है, किसके होने से तृष्णा होती है, किसके होने से उपादान होता है। फिर उन्होंने इन प्रश्नों के यथोचित उत्तर भी दिये।

उन्होंने यह भी कहा कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण प्रतीत्यसमुत्पाद की कड़ियों, उनके समुदय, उनके निरोध और उनका निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को नहीं जानते हैं, वे 'श्रमण' अथवा 'ब्राह्मण' कहलाने योग्य नहीं होते और वे इस जन्म में स्वयं अभिज्ञा से श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार नहीं कर पाते हैं।

उन्होंने आयुष्मान कच्चान-गोत्र को 'सम्यक दृष्टि' के बारे में समझाते हुए उन्हें 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का दिग्दर्शन कराया। फिर एक भिक्षु को समझाया कि इस नियम की विभिन्न कड़ियों के निरोध का उपदेश करने वाले को कहा सकते हैं –'धर्मकथिक', निरोध के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति को 'धर्मानुधर्मप्रतिपन्न' और जरा-मरण का निरोध हो जाने से विमुक्त हुए व्यक्ति को 'इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त किया हुआ भिक्षु'।

भगवान ने अचेल कस्सप की 'दुःख' और तिम्बरुक परिब्राजक की 'सुख-दुःख' के बारे में भ्रांतियों का निराकरण किया। इसके परिणामस्वरूप ये

दोनों भावविभोर होकर भगवान की शरण चले गये, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी । कालांतर में भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाकर और तत्पश्चात अप्रमत्त, आतापी एवं दृढसंकल्प होकर विहार करते हुए अचेल कस्सप ने अरहंत अवस्था प्राप्त की, और तिम्बरुक परिब्राजक जन्म भर के लिए भगवान का शरणागत उपासक हुआ ।

भगवान ने 'मूर्ख' और 'पंडित' का भेद भी समझाया। उन्होंने कहा कि मूर्ख व्यक्ति अविद्या और तृष्णा का पूरी तरह क्षय करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, इसलिए शरीर-रूपी नया-नया चोला धारण करता रहता है, या यों कहा जाय कि दुःख-विमुक्त नहीं होता है। 'पंडित' का आचरण इसके सर्वथा विपरीत होता है, इससे वह नया चोला धारण न कर सर्वथा दुःख-विमुक्त हो जाता है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का नियम शाश्वत है। कोई बुद्ध हो या न हो, यह नियम तो अपना कामकरता ही रहता है। कभी कोई बुद्ध उत्पन्न होता है, तो इस नियम का साक्षात्कार कर इसे दूसरों को समझाता है ।

### ३. दसबल-वग्गो

[सुत्त – दसबल, दुतियदसबल, उपनिस, अञ्ञतित्थिय, भूमिज, उपवाण, पच्चय, भिक्खु, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण।]

भगवान ने भिक्षुओं को प्रकट किया कि तथागत दस बलों और चार वैशारद्यों से युक्त हो सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी हैं, परिषदों में सिंहनाद करते हैं और ब्रह्मचक्र को प्रवर्तित करते हैं – यह रूप है, यह इसका समुदय है, यह इसका निरोध हो जाना है; ऐसे ही वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में भी कहते हैं। इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके नहीं होने से यह नहीं होता, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है। अविद्या से आरंभ हो कर प्रतीत्यसमुत्पाद की एक-एक कड़ी से कैसे अगली-से-अगली कड़ी तैयार होकर 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है, और इसी क्रम से एक-एक का निरोध होने से कैसे सारे दुःख का निरोध हो जाता है-उन्हों ने बताया।

उन्होंने भिक्षुओं को खूब परिश्रम करते हुए अपनी अपनी प्रव्रज्या सफल बनाने का आह्वान किया, जिससे वे अप्राप्त को प्राप्त कर सकें, साक्षात्कार न किये हुए का साक्षात्कार कर सकें ।

उन्होंने भिक्षुओं को कहा कि मैं यह उपदेश करता हूँ कि जानने तथा देखनेवाले का ही आस्रवक्षय होता है, न जिनने न देखने वाला का नहीं। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इन्हें जान कर और देख कर आस्रवों का क्षय होता है – यह रूप है, यह इसका समुदय है, यह इसका निरोध हो जाना है, इत्यादि। उन्होंने यह भी कहा कि आस्रवों के क्षय हो जाने पर जो एतद्विषयक ज्ञान होता है, उसे भी मैं सहेतुक बतलाता हूं, अहेतुक नहीं। ऐसे ही विमुक्ति, वैराग्य, निर्वेद, यथार्थज्ञान-दर्शन, समाधि, सुख आदि को भी मैं सहेतुक बतलाता हूं, अहेतुक नहीं।

एक अवसर पर अन्यतैर्थिक परिब्राजकों ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा कि कुछ श्रमण अथवा ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बतलाते हैं, कुछ इसे दूसरे का किया हुआ बतलाते हैं, कुछ इसे दोनों प्रकार से किया हुआ बतलाते हैं और कुछ इसे न अपना स्वयं किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, बल्कि अकारण घटित हुआ बतलाते हैं। इस बारे में श्रमण गौतम का क्या कहना है ? एक अन्य अवसर पर आयुष्मान भूमिज ने भी आयुष्मान सारिपुत्त से यही प्रश्न किया।

आयुष्मान सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि भगवान ने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बतलाया है। यह स्पर्श के प्रत्यय (कारण) से होता है। जो कर्मवादी श्रमण अथवा ब्राह्मण दुःख के बारे में उक्त प्रकार से अपने-अपने मंतव्य प्रकट करते हैं, उनका भी आधार स्पर्श ही होता है।

आयुष्मान आनन्द द्वारा यह कथासंलाप भगवान के ध्यान में लाये जाने पर उन्होंने आयुष्मान सारिपुत्त के कथन को एकदम सही बतलाया। उन्होंने कहा कि अविद्या के पूर्णतया निरोध से वह कर्म नहीं होता, जिससे सुख-दुःख उत्पन्न हों।

एक समय आयुष्मान उपवाण ने स्वयं भी भगवान के समक्ष उपस्थित होकर यही जिज्ञासा प्रकट की। उन्होंने उसका भी समाधान इसी प्रकार किया।

भगवान ने भिक्षुओं को प्रतीत्यसमुत्पाद का व्याख्यान करते हुए कहा कि जो आर्यश्रावक इसके प्रत्ययों, उनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को जानता है, वह कहलाता है – दृष्टिसंपन्न, दर्शनसंपन्न, सद्धर्म को प्राप्त, शैक्ष्य ज्ञान से युक्त, शैक्ष्य विद्या से युक्त, धर्म के स्रोत में आया हुआ, बींधती हुई प्रज्ञा वाला आर्य, अथवा अमृत के द्वार पर अवस्थित।

## ४. कळारखत्तिय-वग्गो

[सुत्त – भूत, कळार, ञाणवत्थु, दुतियञाणवत्थु, अविज्जापच्चय, दुतियअविज्जापच्चय, नतुम्ह, चेतना, दुतियचेतना, ततियचेतना।]

भगवान के आह्वान पर आयुष्मान सारिपुत्त ने धर्म के ज्ञाता और शैक्ष्य – इनके ज्ञान और आचार को लेकर इनका विस्तार से अर्थ कहा। भगवान ने इसका अनुमोदन किया।

एक अन्य अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान को स्पष्ट किया कि जिस कारणसे जन्म होता है, उस कारणके क्षय को जानकर ही मैं कहता हूं कि जन्म का भी क्षय हुआ। तभी मैं कहता हूं –'जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूरा हुआ, जो करना था सो करलिया, इससे परे यहां आना नहीं।' जन्म का कारण होता है भव, भव का उपादान, उपादान का तृष्णा, तृष्णा का वेदना। वेदनाएं अनित्य होती हैं। 'जो अनित्य है, वह दुःख है' –ऐसा जान लेने, देख लेने से, मैं वेदनाओं के प्रति आसक्त नहीं होता हूं।

भगवान ने भिक्षुओं को ज्ञान के ४४ विषयों का उपदेश दिया। ये विषय हैं – जरा-मरण, इसके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त करानेवाले उपाय का ज्ञान; और इसी भांति जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, छः इंद्रियों, नामरूप, विज्ञान तथा संस्कारों में से प्रत्येक के बारे में चार प्रकार का ज्ञान।

उन्होंने भिक्षुओं को ज्ञान के ७७ विषयों के बारे में भी उपदेश किया। ये विषय हैं –जन्म होने से जरा-मरण का ज्ञान, जन्म न होने से जरा-मरण न होने का ज्ञान, अतीत काल में भी जन्म होने से जरा-मरण हुआ करता था इसका ज्ञान, अतीत काल में भी जन्म न होने से जरा-मरण नहीं होता था इसका ज्ञान, भविष्य में भी जन्म होने से जरा-मरण होगा इसका ज्ञान, भविष्य में भी जन्म न होने से जरा-मरण नहीं होगा इसका ज्ञान, जिन धर्मों की स्थिति का ज्ञान है, वे भी क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, दूर होने वाले और निरुद्ध होने वाले हैं इसका ज्ञान; और इसी भांति जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, छः इंद्रियों, नामरूप, विज्ञान तथा संस्कारों में से प्रत्येक के बारे में सात प्रकार का ज्ञान। संस्कारों का प्रभव अविद्या से होता है।

भगवान ने कहा कि जो लोग ऐसी मिथ्या दृष्टि रखते हैं कि जो जीव है वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है और शरीर दूसरा, उनका ब्रह्मचर्यवास फलीभूत नहीं हो सकता। अतः इस प्रकार के प्रश्न अनर्गल हैं –जरा-मरण क्या है, और

किसको होता है? मैं दोनों अंतों को छोड़ मध्य से धर्मोपदेश करता हूं कि जन्म के हेतु से जरा-मरण होता है, भव के हेतु से जन्म, उपादान के हेतु से भव, तृष्णा के हेतु से उपादान. . . अविद्या के हेतु से संस्कार। अविद्या के पूर्णतः निरुद्ध हो जाने से लोगों की मिथ्या-दृष्टि प्रणष्ट हो जाती है।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि यह काया न तो तुम्हारी अपनी है और न किसी दूसरे की। इसे पूर्व में किये गये कर्मों के कारण अभिसंस्कृत और चेतना तथा वेदना से संयुक्त जानना चाहिए।

उन्होंने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि जो विचार करता है, योजना बनाता है, काम में जुट जाता है, वह विज्ञान की स्थिति का आलंबन होता है। विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से भविष्य में नया-नया भव प्राप्त होता रहता है, नामरूप उगता रहता है, नति होती है जिससे भविष्य में गति होती है। इसके फलस्वरूप प्रतीत्यसमुत्पाद का सारा प्रपंच क्रियाशील हो उठता है और 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है। ऐसा न होने से सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

## ५. गहपति-वग्गो

[सुत्त - पञ्चवेरभय, दुतियपञ्चवेरभय, दुक्ख, लोक, आतिक, अञ्ञतरब्राह्मण, जाणुस्सोणि, लोकायतिक, अरियसावक, दुतियअरियसावक।]

भगवान ने अनाथपिण्डिक गृहपति को कहा कि जब आर्यश्रावक के पांच वैर-भय शांत हो जाते हैं, वह स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त हो जाता है, आर्य-ज्ञान प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और समझ लिया गया होता है, तब वह चाहे तो अपने आप को ऐसा कह सकता है - "मेरा नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि, अपाय और दुर्गति में पड़ना - ये सब क्षीण हो गये हैं। मैं स्रोतापन्न हो गया हूं, जो धर्म से पतित नहीं हो सकता और जिसका संबोधि प्राप्त कर लेना निश्चित है।"

फिर उन्होंने समझाया कि पांच वैर-भय हैं, पांच शीलों का पालन न करके इसी जन्म या परलोक में वैर-भय को बढ़ाना और इस प्रकार चैतसिक दुःख, दौर्मनस्य में बढ़ोतरी करना। स्रोतापत्ति के चार अंग हैं - बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति अचल श्रद्धा का भाव और आर्य-जनों के प्रिय शीलों से युक्त होना। प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा वा समझ लिया गया आर्य-ज्ञान होता है - प्रतीत्यसमुत्पाद का सही चिंतन - 'इसके होने से यह होता है, इसके नहीं होने से यह नहीं होता।

इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है, इसका निरोध होने से यह निरुद्ध हो जाता है।'

भगवान ने भिक्षुओं को दुःख के समुदय और अवसान के बारे में भी उपदेश दिया। उन्होंने समझाया कि इंद्रियों और उनके अपने-अपने विषयों के होने से उनका अपना-अपना विज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों का मेल है स्पर्श। स्पर्श से जागती है वेदना और वेदना से तृष्णा। इस प्रकार दुःख का समुदय होता है। परंतु तृष्णा के पूरी तरह निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास का निरोध हो जाता है। इस प्रकार सारे दुःखों का निरोध हो जाता है। यही दुःख का अवसान होता है। उन्होंने इसी प्रकार लोक के समुदय और अवसान के बारे में भी समझाया।

एक समय एक ब्राह्मण ने भगवान से यह जानना चाहा कि क्या जो करता है, वही भोगता है; अथवा करता कोई और है और भोगता कोई और? भगवान ने कहा कि मैं इन दोनों अंतों को छोड़ कर मध्य से धर्म का उपदेश करता हूं कि कैसे अविद्यादि प्रत्ययों के कारण 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है और कैसे इनके निरुद्ध होने से सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

एक अन्य अवसर पर जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से जानना चाहा कि क्या सब कुछ है, अथवा सब कुछ नहीं है। उन्होंने इसे भी कहा कि मैं इन दोनों अंतों को छोड़ कर मध्य से धर्म का उपदेश करता हूं।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम के बारे में कोई संशय नहीं होता है। लोक के समुदय और निरोध को यथाभूत जानने के कारण वह दृष्टिसंपन्न, दर्शनसंपन्न, इत्यादि कहलाता है।

### ६. दुक्ख-वग्गो

[सुत्त – परिवीमंसन, उपादान, संयोजन, दुतियसंयोजन, महारुक्ख, दुतियमहारुक्ख, तरुणरुक्ख, नामरूप, विञ्ञाण, निदान।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कैसे सर्वशः दुःख के समूल विनाश के लिए विमर्श किया जाना चाहिए।

उन्होंने कहा कि जो जरामरणादि, इनके समुदय, निरोध और निरोध प्राप्त कराने वाले उचित मार्ग को प्रज्ञापूर्वक जानता है, और वैसे प्रतिपन्न हुआ

धर्माचरण करता है, वह सर्वशः जरामरणादि के निरोध, दुःख के समूल विनाश के लिए प्रतिपन्न होता है। जब उसकी अविद्या प्रहीण होकर विद्या जागती है तब वह किसी भी प्रकार का संस्कार बनने नहीं देता, और सर्वथा अनासक्त हुआ परिनिवृत्त हो जाता है। तब वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।' यही दुःखों का अंत है ।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि आसक्ति पैदा करने वाले धर्मों में स्वाद देखने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जन्म और जन्म से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है। परंतु आसक्ति पैदा करने वाले धर्मों में दुष्परिणाम देखने से तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

भगवान ने आसक्ति पैदा करनेवाले धर्मों को बंधनकारक धर्मों के रूप में लेते हुए भी उक्त प्रकार से ही धर्म को समझाया। इस गूढ़ विषय को सु-स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के उदाहरण भी दिये, जैसे –

* आग के ढेर में रह-रह कर लकड़ियां और सूखी घास डाल कर इसको निरंतर जलाये रखना, अथवा इन्हें आग में न डाल कर उसे शांत होने देना ।

*तेल-प्रदीप में रह-रह कर तेल डाल और बत्ती को उसका कर इसको देर तक जलाये रखना, अथवा ऐसा न करते हुए इसे बुझ जाने देना।

*जड़ों से रस का आहरण कर महावृक्ष का पनपना, अथवा जड़ों के पूर्ण उच्छेद एवं प्रणाश से उसका सदा के लिए उन्मूलन हो जाना।

### ७. महावग्गो

[सुत्त – अस्सुतवा, दुतियअस्सुतवा, पुत्तमंसूपम, अत्थिराग, नगर, सम्मस, नळकलापी, कोसम्बि, उपयन्ति, सुसिम।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि अज्ञ, पृथग्जन भी चार महाभूतों से बने हुए शरीर से ऊब कर इससे छुटकारा पाने की कामना करने लगता है क्योंकि वह इसका चय, अपचय, आदान, प्रक्षेपण अपनी आंखों से देखता है, परंतु वह चित्त

(मन, विज्ञान) के बारे में ऐसी कामना नहीं करता क्योंकि वह चिरकाल से इसके प्रति ऐसी आसक्ति संजोये रहता है –'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है'।

ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद को भली प्रकार समझता है –'इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है।' उसके ऐसा जानने से वह स्पर्श, वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान से निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है और उसमें यह ज्ञान जागता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

भगवान ने भिक्षुओं को चार प्रकार के आहार बतलाये –१. कौर वाला (स्थूल या सूक्ष्म), २. स्पर्श, ३. मन की चेतना, और ४. विज्ञान। फिर उन्होंने यह भी समझाया कि इन भिन्न-भिन्न प्रकार के आहारों को किस रूप में समझना चाहिए। यदि इन आहारों से राग, अनुराग, तृष्णा जागने लगे तो विज्ञान ठहरने और बढ़ने लगता है। इससे नाम-रूप, नाम-रूप से संस्कार, संस्कारों से भविष्य में नया भव, नये भव से जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु होते हैं। ये शोक, दुःख और परेशानी लाते हैं। यदि आहारों से राग, अनुराग, तृष्णा न जागे तो विज्ञान के न ठहरने, न बढ़ने से आगे का सारा क्रम रुक जाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को यह भी बतलाया कि मुझ में किस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान जागा। मेरे द्वारा प्रतिपादित मार्ग वही है जिस पर मेरे पूर्ववर्ती सम्यक संबुद्ध चला करते थे। और वह मार्ग यही है, जो 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहलाता है।

एक अवसर पर भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि तुम अपने भीतर ही भीतर खूब मनन करो। फिर यह भी समझाया कि इसके लिए खूब जानो कि जरामरणादि नाना प्रकार के दुःखों का निदान, उत्पत्ति, प्रभव क्या है? किसके होने से जरा-मरण होता है, किसके नहीं होने से यह नहीं होता है? ऐसे ही उपधि (आसक्ति) एवं तृष्णा के बारे में भी जानकारी करो।

एक समय आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा कि क्या जरामरणादि अपने स्वयं के किये हुए होते हैं, या दूसरे के किये हुए, या अपने स्वयं के और दूसरे के भी किये हुए, या न अपने स्वयं के और न दूसरे के किये हुए बल्कि अकारण उत्पन्न हुए होते हैं? आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि इनमें से

एक भी बात सही नहीं है। ये प्रत्ययों के कारण अस्तित्व में आते हैं और प्रत्ययों के निरोध से निरुद्ध हो जाते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम का प्रख्यापन किया।

आयुष्मान नारद ने यह स्वीकारोक्ति की है कि भले ही मुझे यह यथार्थ ज्ञान हो गया है कि 'भव का निरोध निर्वाण होता है', तो भी मैं क्षीणास्रव अरहंत नहीं हूं। ऐसे व्यक्ति की तुलना उससे की जा सकती है जो कुंवें में झांक कर यह तो जान ले कि इसमें पानी है परंतु उसे शरीर से छू न पाये।

एक समय सुसिम नाम के परिव्राजक ने भगवान के पास जाकर इस उद्देश्य से प्रव्रज्या और उपसंपदा पायी कि उनके भिक्षुसंघ के समान ही उसका भी आदर-सत्कार हो और उसे चीवर, पिंडपात आदि प्राप्त हों। वहां उसे पता चला कि कई भिक्षु बिना ऋद्धियां प्राप्त किये ही परम विमुक्त अवस्था का साक्षात्कार कर लेते हैं, और ये अपने आप को 'प्रज्ञाविमुक्त' कहते हैं।

इसका निदान प्राप्त करने के लिए सुसिम भगवान के पास गया। जब उन्होंने उसी से प्रश्न पूछ-पूछ कर यह बात उसे स्पष्ट कर दी कि कैसे ऋद्धियां प्राप्त किये बिना भी परम विमुक्त अवस्था का साक्षात्कार हो जाता है, तब वह उनके चरणों पर गिरकर अपने इस अपराध के लिए उनसे क्षमा मांगने लगा कि मैंने आपके सु-आख्यात धर्मविनय में चोर के समान प्रव्रज्या ग्रहण की है, परंतु साथ ही अपना यह संकल्प भी बतलाया कि मैं भविष्य में ऐसा न होने दूंगा।

इस पर भगवान ने उसे क्षमा करते हुए कहा कि यदि कोई व्यक्ति अपने अपराध का धर्मानुकूल प्रायश्चित कर भविष्य में वैसा न करने का संकल्प करता है, तो वह आर्य विनय में उत्कर्ष ही माना जाता है।

### ८. समणब्राह्मण-वग्गो

[सुत्त – जरा-मरण, जातिसुत्तादिदसक, भव, उपादान, तण्हा, वेदना, फस्स, सळायतन, नाम-रूप, विञ्ञाण, सङ्खार।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण जरा-मरण, जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, छः इंद्रियों, नाम-रूप, विज्ञान तथा संस्कारों, और उनके समुदय, निरोध एवं निरोध प्राप्त कराने वाले उपाय को प्रज्ञापूर्वक नहीं जानते हैं वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार नहीं कर पाते हैं। परंतु जो इन्हें

प्रज्ञापूर्वक जानते हैं, वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगते है।

### ९. अन्तरपेय्याल

[सुत्त - सत्थु, दुतियसत्थुसुत्तादिदसक, सिक्खा, योग, छन्द,
उस्सोळ्हि, अप्पटिवानी, आतप्प,विरिय, सातच्च, सति,
सम्पजञ्ञ, अप्पमाद।]

इन सुत्तों में भिक्षुओं को समझाया गया है कि जरामरणादि को न जानते हुए, न देखते हुए उनके यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज की जानी चाहिए। ऐसे ही इनके समुदय, निरोध और निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग के यथार्थ ज्ञान के लिए भी । इनके यथार्थ ज्ञान के लिए जिन-जिन का आश्रय लेना चाहिए, वे हैं - शिक्षा, योग, छंद, उत्साह, अप्रत्यावर्तन, उद्योग, वीर्य, सातत्य, सजगता, संप्रज्ञान और अप्रमाद।

## २. अभिसमयसंयुत्त

इस संयुत्त में ग्यारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – नखसिखा, पोक्खरणी, सम्भेज्जउदक, दुतियसम्भेज्जउदक, पथवी, दुतियपथवी, समुद्द, दुतियसमुद्द, पब्बत, दुतियपब्बत, ततियपब्बत।

एक समय भगवान ने अपने नखाग्र पर एक बालू का कण रख भिक्षुओं से पूछा कि कौन बड़ा है – मेरे नखाग्र पर रखा हुआ बालू का कण या यह महापृथ्वी?

भिक्षुओं ने उत्तर दिया – यह महापृथ्वी ही बहुत बड़ी है। बालू का कण तो बहुत छोटा है। यह महापृथ्वी का लाखवां भाग भी नहीं है।

इस पर भगवान ने उन्हें कहा कि इसी प्रकार दृष्टिसंपन्न ज्ञानी आर्यश्रावक का वह दुःख बहुत बड़ा है जो क्षीण हो गया है, जो बचा है वह बहुत कम है। पूर्व में क्षीण हुए दुःख-स्कंध के सामने बचा हुआ दुःख अधिक से अधिक सात जन्मों तक रह सकता है। यह उसका लाखवां भाग भी नहीं है। इस प्रकार धर्म का ज्ञान, धर्मचक्षु प्राप्त हो जाना बड़ा कल्याणकारी होता है।

भगवान ने अन्य भी अनेक उपमाओं के माध्यम से भिक्षुओं को सुस्पष्ट किया कि स्रोतापन्न व्यक्ति के बचे हुए दुःख उसके क्षीण हुए दुःखों की तुलना में अत्यल्प होते हैं।

## ३. धातुसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है, जिनमें उनतालीस सुत्त हैं।

### १. नानत्त-वग्गो

[सुत्त – धातुनानत्त, फस्सनानत्त, नोफस्सनानत्त, वेदनानानत्त,
दुतियवेदनानानत्त, बाहिरधातुनानत्त, सञ्ञानानत्त,
नोपरियेसनानानत्त, बाहिरफस्सनानत्त, दुतियबाहिरफस्सनानत्त।]

भगवान ने भिक्षुओं को धातुओं का नानात्व इस प्रकार बतलाया –चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुविज्ञानधातु; और इसी प्रकार श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया तथा मन से संबंधित तीन-तीन का धातुसमूह।

भगवान ने धातुनानात्व अन्य प्रकार से भी कहा –चक्षुधातु, श्रोत्रधातु, घ्राणधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, मनोधातु। यह धातुनानात्व स्पर्शनानात्व का कारण बनता है – चक्षुधातु से चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्रधातु से श्रोत्रसंस्पर्श, इत्यादि। स्पर्शनानात्व वेदनानानात्व का कारण बनता है – चक्षु-संस्पर्श से चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र-संस्पर्श से श्रोत्रसंस्पर्शजा वेदना, इत्यादि।

भगवान ने एक अन्य प्रकार से भी धातुनानात्व कहा –रूपधातु, शब्दधातु, गंधधातु, रसधातु, स्प्रष्टव्यधातु, धर्मधातु। इस धातुनानात्व से, क्रमशः, संज्ञानानात्व, संकल्पनानात्व, छंदनानात्व, तरह-तरह की लगन और तरह-तरह के यत्न होते हैं।

भगवान ने यह भी समझाया कि तरह-तरह के यत्न होने से रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म के तरह-तरह के लाभ कैसे होते हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ऊपर कही गयी सभी बातें अनुलोम क्रम से ठीक बैठती हैं, प्रतिलोम क्रम से नहीं।

### २. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – सत्तधातु, सनिदान, गिञ्जकावसथ, हीनाधिमुत्तिक,
चङ्कम, सगाथा, अस्सद्धसंसन्दन, अस्सद्धमूलक, अहिरिकमूलक,
अनोत्तप्पमूलक, अप्पस्सुतमूलक, कुसीतमूलक।]

भगवान ने भिक्षुओं को सात धातुएं गिनायीं – आभाधातु, शुभधातु,

आकाशानंत्यायतनधातु, विज्ञानानंत्यायतनधातु, आकिंचन्यायतनधातु, नैवसंज्ञानासंज्ञायतनधातु तथा संज्ञावेदयितनिरोधधातु। फिर उन्होंने यह भी बतलाया कि ये धातु किस-किस प्रत्यय से जाने जाते हैं और इनकी प्राप्ति कैसे-कैसे होती है ?

उन्होंने कहा कि कामवितर्क, ब्यापादवितर्क तथा विहिंसावितर्क, और इसी प्रकार नैष्क्रम्यवितर्क, अब्यापादवितर्क, तथा अविहिंसावितर्क किसी-न-किसी निदान से उत्पन्न होते हैं, बिना निदान के नहीं; और ऐसा होता भी किस प्रकार से है?

एक अवसर पर भगवान ने बतलाया कि धातु के प्रत्यय से उत्पन्न होते हैं संज्ञा, दृष्टि व वितर्क। अविद्या धातु एक बड़ी धातु है। यदि धातु हीन, मध्यम अथवा उत्तम हो तो संज्ञा, दृष्टि, वितर्क, चेतना, अभिलाषा, प्रणिधि, पुरुष व वचन भी उन्हीं के अनुरूप हीन, मध्यम अथवा उत्तम प्रकार के उत्पन्न होते हैं। धातुओं के अनुसार ही सत्त्व संगठित होते वा चलते हैं – हीन प्रवृत्ति वाले हीन प्रवृत्ति वालों के साथ, अच्छी प्रवृत्ति वाले अच्छी प्रवृत्ति वालों के साथ। अतीत काल में भी ऐसे ही होता था, भविष्य में भी ऐसे ही होगा और अभी भी ऐसे ही होता है।

भगवान ने कहा कि यह ऐसे ही है जैसे गूथ गूथ के साथ, मूत्र मूत्र के साथ, थूक थूक के साथ, पीब पीब के साथ, लहू लहू के साथ संगठित होता वा चलता है और दूध दूध के साथ, तेल तेल के साथ, घी घी के साथ, मधु मधु के साथ और गुड़ गुड़ के साथ संगठित होता व चलता है।

भगवान ने चंक्रमण करते हुए कुछ भिक्षुओं को देखकर भी बतलाया कि प्रज्ञावान भिक्षु प्रज्ञावानों के साथ, ऋद्धिमान भिक्षु ऋद्धिमानों के साथ, धुतांगधारी धुतागऽधारियों के साथ, दिव्य चक्षु वाले दिव्य चक्षु वालों के साथ, धर्मकथिकधर्मकथिकों के साथ, पापेच्छ पापेच्छों के साथ चंक्रमण कर रहे हैं।

भगवान ने सीख दी कि एकांतवासी आर्यों, दृढ़-संकल्प ध्यानियों और नित्य उत्साही पंडितों का साथ करना चाहिए।

### ३. कम्मपथ-वग्गो

[सुत्त – असमाहित, दुस्सील, पञ्चसिक्खापद, सत्तकम्मपथ, दसकम्मपथ, अट्ठङ्गिक, दसङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि सत्त्व धातुवश संगठित होते व चलते हैं, जैसे श्रद्धारहित श्रद्धारहितों के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, अविचारी अविचारियों के साथ, असमाहित असमाहितों के साथ, दुःशील दुःशीलों के साथ, दुष्प्रज्ञ दुष्प्रज्ञों के साथ, इत्यादि। ऐसे ही श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, लज्जावान लज्जावानों के साथ, विचारवान विचारवानों के साथ, समाहित समाहितों के साथ, शीलवंत शीलवंतों के साथ, प्रज्ञावान प्रज्ञावानों के साथ, इत्यादि।

इसी प्रकार हिंसक, चोर, छिनाल, झूठे, चुगलखोर, रूखा बोलने वाले, गप्पी, लोभी, व्यापन्नचित्त और मिथ्या दृष्टि वाले भी धातुवश संगठित होते व चलते हैं; और ऐसे ही इनसे विपरीत आचरण करने वाले।

इसी प्रकार मिथ्या दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या वाणी, मिथ्या कर्मांत, मिथ्या आजीविका, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति, मिथ्या समाधि, मिथ्या ज्ञान एवं मिथ्या विमुक्ति वाले भी धातुवश संगठित होते व चलते हैं; और ऐसे ही इनसे विपरीत स्थिति वाले।

## ४. चतुत्थ-वग्गो

[सुत्त - चतुधातु, पुब्बेसम्बोध, अचरिं, नोचेदं, एकन्तदुक्ख, अभिनन्द, उप्पाद, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, ततियसमणब्राह्मण।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि धातु चार होते हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु। बुद्ध बनने से पहले मुझे जिज्ञासा हुई कि इन धातुओं का क्या आस्वाद है, इनमें क्या आदीनव (दोष) है और इनसे निःसरण (मुक्ति) क्या होती है? तब मुझे लगा कि इनसे जो सुख-चैन मिलता है वह इनका आस्वाद है; जो इनमें अनित्य, दुःखात्मक और परिवर्तनशील धर्म हैं, वह इनका आदीनव है; और जो इनके प्रति छंद-राग को दूर करना, हटाना है, वही इनसे निःसरण है। जब तक मुझे इनके आस्वाद, आदीनव और निःसरण का यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, तब तक मैंने अपने सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया।

उन्होंने और भी कहा कि जो कोई इन धातुओं का अभिनंदन करता है, वह दुःख का अभिनंदन करता है। जो दुःख का अभिनंदन करता है, वह दुःख-मुक्त नहीं होता है। जो इनका अभिनंदन नहीं करता है, वह दुःख का अभिनंदन नहीं करता है। जो दुःख का अभिनंदन नहीं करता है, वह दुःख-मुक्त हो जाता है।

जो श्रमण या ब्राह्मण इन धातुओं के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव,

निःसरण को यथार्थतः जानते हैं, अथवा इनके समुदय, निरोध और इनका निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को प्रज्ञापूर्वक जानते हैं, वही इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगते हैं, दूसरे नहीं।

## ४. अनमतग्गसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें बीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्गो

[सुत्त – तिणकट्ठ, पथवी, अस्सु, खीर, पब्बत, सासप, सावक, गङ्गा, दण्ड, पुग्गल।]

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि इस संसार का प्रारंभ जाना नहीं जा सकता। इसमें संसरण करने वाले अविद्या-ग्रस्त लोगों की पूर्वकोटि भी जानी नहीं जा सकती।

इस बात को उन्होंने उपमा देकर समझाया। जैसे कोई पुरुष इस जंबुद्वीप के घास, लकड़ी, डाल, पात तोड़कर एक स्थान पर इकट्ठे कर दे और फिर चार-चार अंगुल भर इनके टुकड़े करके इन्हें फेंकता चला जाय – 'यह मेरी माता हुई, यह मेरी माता की माता हुई' – तब भी यह माता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, भले ही जंबुद्वीप के घास, लकड़ी, डाल, पात सब समाप्त हो जायँ।

उन्होंने आगे कहा कि संसार में चिरकाल से दुःख और पीड़ा का बोलबाला है, और श्मशान भरता जा रहा है। अतः सभी संस्कारों से निर्वेद पाना, राग न करना और विमुक्त हो जाना ही अभिप्रेत है।

इसी आशय को सुस्पष्ट करने के लिए उन्होंने अन्य भी अनेक उपमाएं कहीं। फिर उन्होंने भिक्षुओं के इन प्रश्नों का उत्तर दिया कि कल्प कितना बड़ा होता है और अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं। उन्होंने कहा कि कल्प बहुत बड़ा होता है, उसकी इस प्रकार गणना कर पाना सहल नहीं है कि इतने वर्ष, या इतने सौ वर्ष, या इतने हज़ार वर्ष, या इतने लाख वर्ष। ऐसे ही, बहुत से कल्प बीत चुके हैं, जिनकी भी इस प्रकार गणना कर पाना सहल नहीं है कि इतने कल्प, या इतने सौ कल्प, या इतने हजार कल्प, या इतने लाख कल्प। अतः चिरकाल से व्याप्त दुःख और पीड़ा को देखते हुए सभी संस्कारों से निर्वेद पाना, राग न करना और विमुक्त हो जाना ही अभिप्रेत है।

अंत में भगवान ने कहा कि जो दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और आर्य अष्टांगिक मार्ग – इन चार आर्य सत्यों को सम्यक प्रकार से प्रज्ञापूर्वक देख लेता

है, वह अधिक से अधिक सात बार जन्म लेकर सारे बंधनों को क्षीण कर दुःख का अंतकर हो जाता है।

## २. दुतिय-वग्गो

[सुत्त - दुग्गत, सुखित, तिंसमत्त, मातु, पितु, भातु, भगिनि, पुत्त, धीतु, वेपुल्लपब्बत।]

प्रथम वर्ग के अनेक सुत्तों के समान इस वर्ग के भी अनेक सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि इस संसार का प्रारंभ जाना नहीं जा सकता। इसमें संसरण करनेवाले अविद्या-ग्रस्त लोगों की पूर्वकोटि भी जानी नहीं जा सकती।

उन्होंने अनेक उदाहरण देकर उन्हें समझाया है कि यदि तुम किसी व्यक्ति को दुर्गति में पड़ा हुआ देखो तो यह सोचो कि इस दीर्घकाल में हमने भी कभी-न-कभी इस अवस्था को प्राप्त किया होगा। ऐसे ही सुखी व्यक्ति को देखकर भी सोचो। वह यह भी कहते हैं कि ऐसा सत्त्व मिलना सुकर नहीं है जो इस दीर्घ काल में कभी-न-कभी तुम्हारी माता, पिता, भाई, बहिन, बेटा अथवा बेटी न रहा हो। चिरकाल से व्याप्त दुःख एवं पीड़ा को दृष्टिगत करते हुए सभी संस्कारों से निर्वेद पाना, राग न करना और विमुक्त हो जाना ही अभिप्रेत है।

अंत में भगवान ने वेपुल्ल नाम के पर्वत का उदाहरण देते हुए बतलाया है कि समय समय पर इसके नाम बदलते रहे हैं, मनुष्यों के नाम बदलते रहे हैं, उनके आयु-प्रमाण बदलते रहे हैं, उस उस काल के सम्यक संबुद्ध बदलते रहे हैं, उनके अग्रश्रावक बदलते रहे हैं। समय आने पर इस पर्वत का वर्तमान नाम भी लुप्त हो जायगा, ये मनुष्य भी मर जायँगे, मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊंगा। संस्कार इतने अनित्य, नश्वर और भरोसा न दिलाने वाले हैं कि इनसे निर्विण्ण, विरक्त, विमुक्त हो जाना ही उचित है। सारे संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना इनका स्वभाव है। जब ये उत्पन्न हो-होकर पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं और इस प्रकार इनका पूरी तरह से उपशमन हो जाता है, वही वास्तविक 'सुख' होता है ।

## ५. कस्सपसंयुत्त

इस संयुत्त में तेरह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – सन्तुट्ठ, अनोत्तप्पी, चन्दूपम, कुलूपक, जिण्ण, ओवाद, दुतियओवाद, ततियओवाद, झानाभिञ्ञ, उपस्सय, चीवर, परम्मरण, सद्धम्मप्पतिरूपक।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि कस्सप चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय (रोगी का पथ्य), भैषज्य और परिष्कार (आवश्यक वस्तुओं) के मामलों में बिना लोभ जगाये, इनके आदीनव (दोष) को देखते हुए, मुक्ति की प्रज्ञा के साथ इनका भोग करता है, और तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए।

आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान सारिपुत्त को बतलाया कि अनातापी और अनुत्तापी संबोधि, निर्वाण, अनुत्तर योगक्षेम को क्यों नहीं पा सकता, और आतापी तथा उत्तापी ही इन्हें क्यों पा सकता है।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कुलों में कैसे जाना चाहिए – चांद की तरह; शरीर और चित्त को समेटे, नित्य नये, अप्रगल्भ होकर। कुलों में जाना उन्हें चाहिए जिनका चित्त वहां जाकर बँध न जाये, जैसे आकाश में हाथ फेरने पर वह इसमें बँध नहीं जाता। इसके अतिरिक्त उनके मन में ऐसे भाव नहीं आने चाहिए कि कुलवाला मुझे ही दे, बहुत दे, बढ़िया ही दे, शीघ्र दे, सत्कारपूर्वक दे। कस्सप ऐसे ही करता है और सम्यक प्रकार से कुलों में जाता है। तुम्हें भी ऐसे ही करना चाहिए।

भगवान ने कस्सप के ही उदाहरण से भिक्षुओं को समझाया कि किस भिक्षु की धर्मदेशना परिशुद्ध होती है। ऐसा भिक्षु मन-ही-मन ऐसा सोच कर धर्मदेशना करता है – "भगवान का धर्म सु-आख्यात, सांदृष्टिक, सद्यःफलप्रद, 'आओ-देखो' का भाव जगाने वाला, निर्वाण की ओर ले जाने वाला, विज्ञों द्वारा स्वयं जानने के योग्य है। अहो! लोग मेरी धर्मदेशना को सुनें, सुन कर धर्म को जानें, जानकर उसका अभ्यास करें।" इस प्रकार वह दूसरों के प्रति करुणा, दया, अनुकंपा का भाव जगाकर धर्मदेशना करता है।

एक अवसर पर आयुष्मान महाकस्सप ने भगवान के समक्ष प्रकट किया, "मैं लंबे समय से आरण्यक हूं और आरण्यक होने की प्रशंसा करता हूं। मैं पंसुकूलिक, तीन चीवर धारण करने वाला, अल्पेच्छ, संतुष्ट, एकांतवासी,

असंसृष्ट और आरब्धवीर्य हूं, और इनकी प्रशंसा करने वाला हूं।" उन्होंने इसके दो कारण बतलाये – प्रथम तो इसी जन्म में अपने सुखविहार के लिए, और दूसरे, आने वाले लोगों पर अनुकंपा करते हुए कि वे भी इसका अनुकरण करें, जिससे चिरकाल तक उनका हित, सुख हो।

तीन पृथक-पृथक अवसरों पर भगवान ने आयुष्मान महाकस्सप से भिक्षुओं को धर्मोपदेश देने के लिए कहा। उन्होंने यह भी संकेत किया कि चाहे मैं उपदेश करूं या आप। आयुष्मान महाकस्सप ने तीनों बार भगवान से कहा कि इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं, अतः उन्हें उपदेश देना ठीक नहीं है। उन्होंने हर बार इसका कारण भी बताया।

भगवान ने भिक्षुओं को जानकारी दी कि मैं स्वेच्छा से प्रथम से लेकर चतुर्थ ध्यान को, और तत्पश्चात आकाशानंत्यायतन, विज्ञानानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था प्राप्तकर विहार करता हूं, अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं और आस्रवों के क्षीण हो जाने से आस्रवरहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार करता हूं। कस्सप को भी यह सारी सक्षमता प्राप्त है ।

तदनंतर आयुष्मान महाकस्सप के बारे में अशोभनीय वचन कहने के कारण थुल्लतिस्सा नाम की भिक्षुणी के ब्रह्मचर्य से च्युत होने का उल्लेख हुआ है। एक अवसर पर उसने आयुष्मान आनन्द की उपस्थिति में आयुष्मान महाकस्सप द्वारा भिक्षुणियों को धर्मोपदेश करने पर यह कह दिया कि जैसे कोई सुई बेचने वाला किसी सुई बनाने वाले के पास सुई बेचने को जाये, वैसे ही आर्य महाकस्सप ने आर्य आनन्द के सामने धर्मोपदेश करने का साहस किया है। अन्य अवसर पर उसने इस बात पर आपत्ति की कि आर्य महाकस्सप ने आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर क्यों भर्त्सित किया है।

आयुष्मान सारिपुत्त के प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान महाकस्सप ने उन्हें बतलाया कि मरणोपरांत जीव की स्थिति के बारे में भगवान ने इसलिए नहीं बतलाया कि यह न तो अर्थपूर्ण है, न आदिब्रह्मचर्य के लिए उपयुक्त और न ही निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी है । अर्थपूर्ण, उपयुक्त एवं उपयोगी हैं चार आर्य सत्य, जिनको भगवान ने व्याकृत किया है।

अंत में भगवान ने आयुष्मान कस्सप को बतलाया कि यदि भिक्षु, भिक्षुणियां,

उपासक, उपासिकाएं बुद्ध, धर्म, संघ, शिक्षा एवं समाधि के प्रति गौरव तथा सजगता नहीं बनाए रखते तो सद्धर्म का लोप हो जाता है, और यदि ये इन्हें बनाए रखते हैं तो सद्धर्म लुप्त नहीं होता है।

## ६. लाभसक्कारसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है, जिनमें तेंतालीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्गो

[सुत्त – दारुण, बळिस, कुम्म, दीघलोमिक, मीळहक, असनि, दिद्ध, सिङ्गाल, वेरम्भ, सगाथक।]

इन सुत्तों में भगवान भिक्षुओं को समझाते हैं कि अनुत्तर योगक्षेम (निर्वाण) के मार्ग में लाभ, सत्कार, प्रशंसा, कठोर, कटु, और रूक्ष विघ्नकारक होते हैं। अतः तुम्हें यह सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

इस बात को समझाने के लिए भगवान ने अनेक प्रकार की उपमाएं कहीं। इनके माध्यम से उन्होंने भिक्षुओं को सचेत किया कि कैसे-कैसे हथकंडे अपनाकर पापी मार लोगों को लाभ, सत्कार, प्रशंसा के जाल में फांस लेता है, जो चिरकाल तक उनके अहित और दुःख का कारण होता है।

भगवान ने यह भी कहा कि सत्कार अथवा असत्कार पाने वाले जिस अप्रमाणविहारी की समाधि चलायमान नहीं होती है, उस अनवरत ध्यानी और सूक्ष्म दृष्टि वाले विपश्यी को सत्पुरुष 'उपादान (आसक्ति) क्षीण होकर रमण करने वाला' कहते हैं।

### २. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – सुवण्णपाति, रूपियपाति, सुवण्णनिक्खसुत्तादिअट्ठक।]

इन सुत्तों में समझाया गया है कि कई लोग सोना, चांदी, अन्य सांसारिक पदार्थों, इत्यादि के लिए जानबूझकर झूठ नहीं बोलते, पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा पाने के लिए ऐसा कर लेते हैं। निर्वाण के पथ पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा से होने वाले विघ्न को ध्यान में रखते हुए भिक्षुओं को सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

## ३. ततिय-वग्गो

[सुत्त – मातुगाम, कल्याणी, एकपुत्तक, एकधीतु, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, ततियसमणब्राह्मण, छवि, रज्जु, भिक्खु।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि एकांत में कोई अकेली सुंदर स्त्री भले ही किसी के चित्त को न लुभा पाये, परंतु लाभ, सत्कार, प्रशंसा उसके चित्त को फांस लेते हैं।

उन्होंने कहा कि गृही बालकों को चित्त गृहपति तथा आळवक हत्थक का आदर्श अपनाना चाहिए और गृही बालिकाओं को खुज्जुत्तरा तथा वेळुकण्डकिया नन्दमाता का। यदि ये गृह त्याग दें तो बालक और बालिकाएं, क्रमशः, सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान अथवा खेमा तथा उप्पलवण्णा का आदर्श अपनायें।

उन्होंने यह भी कहा कि वही श्रमण अथवा ब्राह्मण इस संसार में अपनी अभिज्ञा से श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य का साक्षात्कार कर विहार करते हैं जो लाभ, सत्कार, प्रशंसा के आस्वाद, आदीनव तथा निःसरण को; अथवा इनके समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव तथा निःसरण को; अथवा इनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को यथार्थतः जानते हैं।

अंत में उन्होंने यहां तक कह डाला कि जिस व्यक्ति की चेतो-विमुक्ति अचल हो गयी हो उसे छोड़कर, यदि कोई व्यक्ति अप्रमत्त, आतापी एवं दृढ़ संकल्प वाला होकर इसी जीवन में सुखविहार ही क्यों न करता हो उसके लिए भी लाभ, सत्कार, प्रशंसा विघ्नकारक ही होते हैं। अतः भिक्षुओं को सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

## ४. चतुत्थ-वग्गो

[सुत्त – भिन्दि, कुसलमूल, कुसलधम्म, सुक्कधम्म, अचिरपक्कन्त, पञ्चरथसत, मातु, पितुसुत्तादिछक्क।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि लाभ, सत्कार, प्रशंसा से अभिभूत हुए देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया। इससे उसके पुण्य के मूल, कुशल धर्म और शुक्ल धर्म कट गये। उसके लाभ, सत्कार, प्रशंसा उसके अपने विनाश, पराभव के लिए हुए, जैसे केले वा बांस के वृक्षों के फल उनके अपने ही विनाश एवं परिहानि के लिए होते हैं ।

उन्होंने यह भी बतलाया कि कई लोग माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री अथवा स्त्री के लिए जानबूझ कर झूठ नहीं बोलते, पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा पाने के लिए ऐसा कर लेते हैं। निर्वाण के पथ पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा से होने वाले विघ्न को दृष्टिगत करते हुए भिक्षुओं को सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

## ७. राहुलसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिसमें बाईस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्गो

[सुत्त – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, वेदना, सञ्ञा, सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध।]

आयुष्मान राहुल ने भगवान से कहा कि मुझे संक्षेप में ऐसा उपदेश दें जिसे सुनकर मैं एकांत में अकेला अप्रमत्त, आतापी और दृढ़-संकल्प होकर विहार करूं।

इस पर भगवान ने उन्हें एक-एककरकेअनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया –

– चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन।

– रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनो।

– चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनः।

– चक्षुसंस्पर्श से होने वाली वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनः।

– रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– पृथ्वीधातु, आपो, तेजो, वायु, आकाश, विज्ञान।

– रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

फिर उन्होंने यह कहा कि इनकी अनित्यता, दुःखता एवं अनात्मता को देखकर (अनुभूति से जान कर) आर्यश्रावक चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, कायाएवं मन से निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है और विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। तब उसमें यह ज्ञान जागता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और

वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

## २. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, वेदना, सञ्ञा,
सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध, अनुसय, अपगत।]

इस वर्ग के पहले दस सुत्तों में वही बात कही गयी है, जिसका उल्लेख प्रथम वर्ग के सुत्तों में हुआ है।

अंतिम दो सुत्तों में आयुष्मान राहुल ने भगवान से पूछा कि क्या जानने, देखने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार, मानानुशय नहीं होते हैं, अथवा इनके हट जाने से चित्त शांत और सु-विमुक्त हो जाता है।

इस पर भगवान ने कहा कि भूत, भविष्य या वर्तमान के, भीतर या बाहर के, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, दूरस्थ अथवा निकटस्थ जितने रूप हैं उन्हें जो यथार्थतः सम्यक प्रज्ञा से इस प्रकार देखता है – 'न यह मेरे हैं, न यह मैं हूं, न यह मेरा आत्मा है', उसके अहंकार, ममकार वा मानानुशय नहीं होते हैं; और जो कोई इन्हें इस प्रकार जान उपादानरहित विमुक्ति पा लेता है, उसका चित्त शांत और सु-विमुक्त हो जाता है।

## ८. लक्खणसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें इक्कीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्गो

[सुत्त – अट्ठि, पेसि, पिण्ड, निच्छवि, असिलोम, सत्ति, उसुलोम, सूचिलोम, दुतियसूचिलोम, कुम्भण्ड।]

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भगवान के समक्ष प्रकट किया कि मैंने आयुष्मान लक्खण के साथ गिज्झकूट पर्वत से नीचे उतरते समय एक अस्थिकंकालको आकाश मार्ग से जाते हुए देखा था। उसे गीध, कौए, चील झपट-झपट कर नोच रहे थे और वह बुरी तरह से चीख रहा था। तब मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि क्या ऐसे भी सत्त्व होते हैं!

यह सुनकर भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि मैंने भी उस सत्त्व को देखा था, परंतु औरों को इसलिए नहीं कहा कि वे शायद इस पर विश्वास न करते। यह सत्त्व गौ-हत्या करने वाला था। इस पाप के फलस्वरूप लंबे समय तक नरक भोगने के पश्चात उसने यह शरीर ग्रहण किया है।

इस वर्ग के दूसरे सुत्तों में भी आयुष्मान महामोग्गल्लान के इसी प्रकार के अनेक अन्य अनुभवों और उनके बारे में भगवान की व्याख्या को सामने लाया गया है।

### २. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – ससीसक, गूथखाद, निच्छविल्थि, मङ्गुलित्थि, ओकिलिनी, असीसक, पापभिक्खु, पापभिक्खुनी, पापसिक्खमान, पापसामणेर, पापसामणेरी।]

इस वर्ग के सुत्तों में भी मनुष्य-जीवन में घृणित कार्य करने के कारण लोगों को अत्यंत दुःखद योनियों में से गुजरते हुए दर्शाया गया है। उदाहरणस्वरूप – परस्त्रीगमन करने वाले को गूथ के कूप में डूबे हुए, छिनाल स्त्री को खाल उतारी हुई स्त्री के रूप में, अपनी सौत पर जलते हुए अंगारे फेंकने वाली राजा की पटरानी को एक बदहवास स्त्री के रूप में, एक डाकू को बिना सिर वाले धड़ के रूप में जिसकी छाती में ही आंखें वा मुँह थे, इत्यादि।

## ९. ओपम्मसंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – कूट, नखसिख, कुल, ओक्खा, सत्ति, धनुग्गह, आणि, कलिङ्गर, नाग, बिळार, सिङ्गाल, दुतियसिङ्गाल।

इन सुत्तों में भगवान ने विविध प्रकार के प्रकरणों का हवाला देते हुए भिक्षुओं को निम्नांकित बातें सीखने के लिए कहा है –

*अप्रमत्त होकर विहार करना।

*मैत्री चित्त विमुक्ति को भावित करना।

*लकड़ी के तख्त पर सोना, और अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार करना।

*बिना लोभ जगाये, बिना होश गँवाए, आदीनव और निस्सरण को ध्यान में रख भिक्षा का सेवन करना।

*शरीर, वचन और मन से रक्षित, स्मृतिमान हो, संयमशील इंद्रियों से ग्राम अथवा निगम में भिक्षाटन के लिए पैठना।

*कृतज्ञ होना, अपने प्रति किये गये थोड़े से भी उपकार को न भूलना।

*बुद्ध द्वारा कहे गये गंभीर, लोकोत्तर, शून्यता-प्रतिसंयुक्त सुत्तों को सुनने-समझने के लिए लालायित होना वा प्रयास करना।

## १०. भिक्खुसंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – कोलित, उपतिस्स, घट, नव, सुजात, लकुण्डक भद्दिय, विसाख, नन्द, तिस्स, थेरनामक, महाकप्पिन, सहायक।

आयुष्मान मोग्गल्लान ने भिक्षुओं को बतलाया कि एकांत में ध्यान करते समय मुझे ऐसा लगा कि जब वितर्क और विचार शांत हो जाने पर द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं, वही 'आर्य मौन' कहलाता है। भगवान ने भी ऋद्धि-बल से मेरे पास आकर मुझे कहा था कि इसमें प्रमाद मत करो, इसमें चित्त को लगाये रखो।

आयुष्मान सारिपुत्त ने बतलाया कि संसार में ऐसा कुछ नहीं है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे दुःख, दौर्मनस्य आदि हों, भले ही वह भगवान बुद्ध हों। उनके लिए मेरे मन में यह होगा कि ऐसे प्रतापी, ऋद्धिमान, महानुभाव अंतर्धान मत हों। यदि वह चिरकालतक रहें, तो यह बहुतों के हित-सुख के लिए होगा।

एक अवसर पर भगवान ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को 'आरब्धवीर्य' का तात्पर्य समझाया। उन्होंने कहा कि जब कोई भिक्षु यह सोचकर विहार करता है कि चाहे मेरी चमड़ी, नसें और हड्डी ही बचें, शरीर में मांस और लहू सूख जायँ, किंतु पुरुष के उत्साह, वीर्य और पराक्रम से जो कुछ पाया जा सकता है, उसे पाये बिना मैं चैन नहीं लूंगा, तब वह 'आरब्धवीर्य' होता है।

एक नया भिक्षु विहार में अल्पोत्सुक हो चुपचाप बैठा रहता था। वह चीवर-कार्य में अन्य भिक्षुओं की सहायता नहीं करता था। जब इन भिक्षुओं ने भगवान तक यह बात पहुँचायी, तब वह बोले कि तुम उस भिक्षु से असंतुष्ट मत हो। वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम फल को अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार करता है, जिसके लिए कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। वह तरुण भिक्षु मार को उसकी सेना सहित जीत कर अंतिम देह धारण किये हुए है।

भगवान ने आयुष्मान सुजात और लकुण्डक भद्दियको भी ब्रह्मचर्य के परम फल को प्राप्त करने वाला बतलाया। उन्होंने आयुष्मान विसाख पञ्चालपुत्र की इसलिए प्रशंसा की कि उन्होंने उपस्थानशाला में भिक्षुओं को धर्मोपदेश देकर उन्हें समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। उन्होंने सजने-धजने की प्रवृत्ति वाले

आयुष्मान नन्द को अरण्यवास के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप वह कामनाओं से विरत हो अरण्य में विहरने लगे। उन्होंने आयुष्मान तिस्स को समझाया कि दूसरों द्वारा चिढ़ाये जाने पर मत चिढ़ो। क्रोध, मान आदि को दूर करने के लिए ही ब्रह्मचर्य का आचरण किया जाता है।

भगवान ने थेर नाम के अकेले रहने वाले भिक्षु का मार्गदर्शन किया कि यथार्थ में अकेले रहना उसे कहते हैं जब कोई अतीत को नष्ट और अनागत को परित्यक्त मानने वाला और वर्तमान के छंद-राग को विजित करने वाला हो जाय।

अंत में भगवान ने आयुष्मान महाकप्पिन और उनके दो सहायक भिक्षुओं की भी इस बात के लिए सराहना की कि वे इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम फल को प्राप्त किये हुए हैं, जिसके लिए कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाया करते हैं।

# संयुत्तनिकाय-२

## खन्धवग्ग

### १. खन्धसंयुत्त

यह संयुत्त पंद्रह वर्गों में विभाजित है जिसमें एक सौ उनसठ सुत्त हैं।

#### १. नकुलपितु-वग्ग

[सुत्त – नकुलपितु, देवदह, हालिद्दिकानि, दुतियहालिद्दिकानि, समाधि, पटिसल्लाण, उपादापरितस्सना, दुतियउपादापरितस्सना, कालत्तयअनिच्च, कालत्तयदुक्ख, कालत्तयअनत्त।]

एक अवसर पर भगवान ने वयोवृद्ध गृहपति नकुलपिता को यह सीख दी कि भले ही तुम्हारा शरीर आतुर हो जाय, पर चित्त को आतुर मत होने दो। इसी बात को आयुष्मान सारिपुत्त ने आगे समझाया कि कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है, और कैसे आतुर नहीं होता है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को अपना समझने से चित्त में आतुरता आती है, क्योंकि ये बदल जाते हैं जिससे दुःख होता है। रूप-वेदनादि को अपना न समझने से चित्त में आतुरता नहीं आती, क्योंकि इनके प्रति अपनत्व का भाव न होने से इनके बदलाव से चित्त प्रभावित नहीं होता।

आयुष्मान सारिपुत्त ने पश्चिम देश में प्रवास करने के इच्छुक भिक्षुओं को सचेत किया कि लोग आपसे भगवान की शिक्षा के बारे में तरह-तरह के प्रश्न पूछ सकते हैं, अतः उनकी शिक्षा के अनुरूप ही उत्तर देने के लिए आपकी तैयारी होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है धर्म का भली प्रकार श्रवण, ग्रहण, उपधारण तथा प्रज्ञा द्वारा प्रतिवेधन।

आयुष्मान महाकच्चान ने गृहपति हालिद्दिकानि को अलग-अलग अवसरों पर किये गये भगवान के निम्न भाषितों का आशय सु-स्पष्ट किया –

'घर को छोड़, बेघर घूमने वाला मुनि गांव में मेल-मिलाप न करते हुए, कामों से रहित हुआ, कहीं अपनापन न जोड़ते हुए, किसी से लड़ाई-झगड़ा मोल नहीं लेता है।'

'तृष्णा के क्षय से विमुक्त हुए, अत्यंत श्रद्धावान, अत्यंत योगक्षेम प्राप्त किये हुए, अत्यंत ब्रह्मचारी, उच्चतम स्थान प्राप्त किये हुए श्रमण अथवा ब्राह्मण देवों तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं।'

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि समाधि की भावना करो; समाहित हुआ भिक्षु यथार्थ को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है; और यह यथार्थ ज्ञान है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का उत्पन्न होना तथा नष्ट हो जाना। फिर उन्होंने यह भी समझाया कि इनकी उत्पत्ति एवं विनाश से क्या आशय लेना होता है ।

एक अन्य अवसर पर उन्होंने भिक्षुओं को एकांत में ध्यान करने के अभ्यास में जुटने के लिए कहा। उनका कथन था कि ऐसा भिक्षु भी यथार्थ को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है।

भगवान ने भिक्षुओं को 'उपादान' तथा 'परितस्सना' और 'अनुपादान' तथा 'अपरितस्सना' के बारे में समझाते हुए कहा कि वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी को भी 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है' – ऐसा मान लेना 'उपादान' एवं 'परितस्सना' का कारण बनता है; और ऐसा न मानना 'अनुपादान' तथा 'अपरितस्सना' का।

अंतिम तीन सुत्तों में भगवान ने भूत, भविष्य एवं वर्तमान –इन तीनों कालों में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि आर्य श्रावक इनकी भूतकालिक स्थिति के बारे में कोई अपेक्षा नहीं करता, न भविष्य की स्थिति का अभिनंदन करता है, और इनकी वर्तमान स्थिति के निर्वेद, विराग एवं निरोध के लिए तत्पर रहता है।

### २. अनिच्च-वग्ग

[सुत्त – अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, यदनिच्च, यंदुक्ख, यदनत्ता, सहेतुअनिच्च, सहेतुदुक्ख, सहेतुअनत्त, आनन्द।]

इन सुत्तों में भगवान ने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की

अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया है, और यह भी समझाया है कि जो अनित्य है वह दुःख है, जो दुःख है वह अनात्म है और जो अनात्म है वह न तो मेरा, न मैं, न मेरी आत्मा है। इनके प्रत्यय और हेतु भी अनित्य, दुःख एवं अनात्म होते हैं, अतः ये स्वयं नित्य, सुख एवं आत्मा नहीं हो सकते। इन सच्चाइयों को जानकर आर्य श्रावक रूप-वेदनादि से निर्वेद प्राप्त कर लेता है; निर्वेद से विरक्ति और विरक्ति से विमुक्ति पा लेता है। विमुक्त होने पर उसे भान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, पुनः यहाँ आना नहीं है।'

अंतिम सुत्त में भगवान ने आयुष्मान आनन्द के एक प्रश्न के उत्तर में उन्हें बतलाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य, संस्कृत (निर्मित), प्रतीत्यसमुत्पन्न, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा तथा निरोधधर्मा हैं। इनके निरोध को दृष्टिगत करते हुए ही 'निरोध', 'निरोध' – ऐसा कहा जाता है।

### ३. भार-वग्ग

[सुत्त – भार, परिञ्ञ, अभिजान, छन्दराग, अस्साद, दुतियअस्साद, ततियअस्साद,अभिनन्दन, उप्पाद, अघमूल, पभङ्गु।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि 'भार', 'भारहार', 'भार का उठाना' तथा 'भार का उतार देना' – इनसे क्या तात्पर्य होता है?

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के पांच उपादानस्कंध 'भार' कहलाते हैं; पुद्गल 'भारहार' कहलाता है; काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा को बनाए रखना 'भार का उठाना' कहलाता है और इसी तृष्णा का सर्वथा निरोध कहलाता है 'भार का उतार देना'।

भगवान ने गाथा के रूप में कहा कि ये पांच स्कंध भार हैं, पुद्गल है भारहार। लोक में भार का उठाना दुःख है, और उसे उतार फेंकना सुख। भार के बोझ को उतार कर और कोई अन्य भार न सहेज कर, तृष्णा को जड़ से उखाड़ कर दुःखमुक्त निर्वाण पा लेता है।

उन्होंने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को 'परिज्ञेय' धर्म बतलाया और राग, द्वेष तथा मोह के क्षय को 'परिज्ञा' की संज्ञा दी। उन्होंने यह भी कहा कि पांच उपादानस्कंधों से विरक्त हुए बिना कोई व्यक्ति अपने दुःखों का विनाश

नहीं कर सकता। इन उपादानस्कंधों में विद्यमान छंदराग का परित्याग कर देने पर ये प्रहीण हो जाते हैं और कटी हुई जड़ वाले ताड़वृक्ष के समान होकर पुनः पनपने योग्य नहीं रहते।

भगवान ने पांच उपादानस्कंधों की आगे चर्चा करते हुए कहा कि इनके प्रत्यय से होने वाला सुख ही इनका आस्वाद है, इनका बदलने वाला स्वभाव ही इनका दोष है, और इनके प्रति होने वाले छंदराग को दबा देना ही इनसे छुटकारा पा लेना है। मैंने जब तक इन उपादानस्कंधों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर, और छुटकारे को छुटकारे के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया, तब तक इस लोक में अनुत्तर सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया। उस समय मुझे यह ज्ञान हुआ –'मेरी विमुक्ति अचल हो गई है, यह मेरा अंतिम जन्म है, अब कोई पुनर्जन्म नहीं है।'

भगवान ने समय-समय पर यह भी समझाया कि –

* पांच स्कंधों का अभिनंदन करना दुःख का अभिनंदन करना है। दुःख का अभिनंदन करने वाला दुःख-मुक्त नहीं होता।

* पांच स्कंधों की उत्पत्ति, स्थिति, अभिनिवृत्ति और प्रादुर्भाव दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरामरण का प्रादुर्भाव होता है।

* पांच स्कंध दुःख हैं। काम-तृष्णा, भव-तृष्णा तथा विभव-तृष्णा दुःख के मूल हैं।

* पांच स्कंध भंगुर हैं, और इनका निरोध अ-भंगुर।

## ४. नतुम्हाकं-वग्ग

[सुत्त – नतुम्हाकं, दुतियनतुम्हाकं, अञ्ञतरभिक्खु, दुतियअञ्ञतरभिक्खु, आनन्द, दुतियआनन्द, अनुधम्म, दुतियअनुधम्म, ततियअनुधम्म, चतुत्थअनुधम्म।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि –

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान तुम्हारे नहीं हैं, इन्हें छोड़ दो। इनका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित, सुख के लिए होगा।

* जिसका जैसा अनुशय रहता है, वह वैसा ही समझा जाता है; जैसा अनुशय नहीं रहता है, वैसा नहीं समझा जाता है।

* जिसका जैसा अनुशय रहता है, वह वैसा ही मापता है; जो जैसा मापता है, वह वैसा ही समझा जाता है।

दो भिक्षुओं ने अनुशय-संबंधी उपदेश को भली प्रकार समझ लिया कि इसका संबंध रूप-वेदनादि के अनुशयों से है। एकांत में अकेले, अप्रमत्त, संयमशील तथा प्रहितात्म हो विहार करते हुए इन भिक्षुओं ने अरहंत अवस्था प्राप्त की।

भगवान के एक प्रश्न के उत्तर में आयुष्मान आनन्द ने कहा कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, और स्थित हुओं का अन्यथात्व जाना जाता है।

अंतिम चार सुत्तों में भगवान ने धर्मानुधर्मप्रतिपन्न भिक्षुओं से अपेक्षा की है कि वे रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के प्रति विरक्त होकर और इन्हें अनित्य, दुःख एवं अनात्म समझ कर विहार करें। ऐसा करने से वे रूप-वेदनादि तथा जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास से मुक्त हो सकते हैं, या यों कहें दुःख-मुक्त हो सकते हैं।

### ५. अत्तदीप-वग्ग

[सुत्त – अत्तदीप, पटिपदा, अनिच्च, दुतियअनिच्च, समनुपस्सना, खन्ध, सोण, दुतियसोण, नन्दिक्खय, दुतियनन्दिक्खय।]

भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि वे स्वयं को अपना द्वीप, अपनी शरण बना कर और किसी अन्य का शरणागत न बन; और ऐसे ही धर्म को द्वीप, शरण बनाकर और किसी अन्य का शरणागत न बनकर विहार करें। और इस प्रकार विहार करते हुए यह जानो कि शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते क्यों हैं? फिर कहा कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से तादात्म्य स्थापित कर लेने से ऐसा होता है।

इसी तादात्म्य से सत्काय की भी उत्पत्ति होती है, और तादात्म्य स्थापित न करने से इसका निरोध हो जाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता, दुःखता एवं अनात्मता को प्रज्ञापूर्वक जानने का उपदेश दिया और यह संकेत किया कि ऐसा करने से चित्त उपादानरहित हो आस्रवों से विरक्त और विमुक्त हो जाता है, और भीतर-ही -भीतर निर्वाण पा लेता है। ऐसा व्यक्ति पूर्वांत, अपरांत की मिथ्या दृष्टियों में नहीं पड़ता।

भगवान ने इन विषयों पर भी प्रकाश डाला –

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से तादात्म्य स्थापित करने से 'अस्मि' की अविद्या होती है, जिससे चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और काय, इन पांच इंद्रियों का अवक्रमण होता है। आर्यश्रावक की अविद्या यहीं प्रहीण होती है।

* अतीत, अनागत, वर्तमान, भीतर, बाहरी, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूरस्थ वा निकटस्थ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान पांच स्कंध कहलाते हैं, ओर इनका आस्रवों सहित उपादान होने पर इन्हें कहते हैं – पांच उपादान-स्कंध।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेने से कि इनमें से कोई भी न मेरा है, न यह मैं हूं, और न यह मेरी आत्मा है, आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है; निर्वेद पाने से विरक्ति और विरक्ति से विमुक्ति पा लेता है। उसे भान हो जाता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है।'

* रूप-वेदनादि, इनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को नहीं जानने वाले न तो श्रमणों में श्रमण समझे जाते हैं, और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण। वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार नहीं कर पाते हैं।

* रूप-वेदनादि को अनित्यता की दृष्टि से देखना सम्यक दृष्टि कहलाती है। यह चित्त को नितांत विमुक्त करने का मार्ग प्रशस्त करती है।

### ६. उपय-वग्ग

[सुत्त – उपय, बीज, उदान, उपादानपरिवत्त, सत्तट्ठान,
सम्मासम्बुद्ध, अनत्तलक्खण, महालि, आदित्त, निरुत्तिपथ।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आसक्त अविमुक्त, और अनासक्त विमुक्त होता है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी में भी आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है, जो बढ़ता रहता है। यदि रूपधातु, वेदनाधातु, संज्ञाधातु, संस्कारधातु तथा विज्ञानधातु से राग प्रहीण हो जाता है, तो विज्ञान का आधार समाप्त हो जाता है जिससे निर्वाण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

उन्होंने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि जो आर्यश्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में तादात्म्य स्थापित नहीं करता और इनकी अनित्यता, दुःखता, अनात्मता, संस्कृतता एवं न होने को यथार्थतः जानता है, और ऐसा कहता है कि 'यदि यह न हो, तो मेरा न हो; यदि यह नहीं होगा, तो मेरा नहीं होगा', तो वह अवरभागीय बंधनों को उच्छिन्न कर लेता है।

भगवान ने कहा कि पांच उपादानस्कंध हैं – रूपोपादान-स्कंध, वेदनोपादान-स्कंध, संज्ञोपादान-स्कंध, संस्कारोपादान-स्कंध तथा विज्ञानोपादान-स्कंध।जब तक मैंने इन्हें चार प्रकार से यथार्थतः नहीं जान लिया, तब तक मैंने सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया।(चार प्रकार से जानना, अर्थात रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को तथा इनके समुदय, निरोध और निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को जानना।)

भगवान ने यह भी बतलाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से क्या अभिप्राय लेना होता है, और यह भी कि इन्हें चार प्रकार से जानकर इनसे निर्वेद, वैराग्य, निरोध प्राप्त करने में लगे हुए सु-प्रतिपन्न हो, इस धर्म-विनय में प्रतिष्ठित होते हैं। जो इस प्रकार उपादान-रहित विमुक्ति पा लेते हैं, वही वास्तव में सु-विमुक्त होते हैं। जो सु-विमुक्त होते हैं, वे केवली होते हैं। जो केवली होते हैं उनके लिए जन्म-मरण का चक्कर नहीं होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि जो भिक्षु सात स्थानों में कुशल और तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है, उसे इस धर्म-विनय में केवली, सफल ब्रह्मचर्य वाला और उत्तम पुरुष कहते हैं। फिर यह भी स्पष्ट किया कि सात स्थानों में कुशलता और तीन प्रकार से परीक्षा करने से क्या आशय लेना होता है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सम्यक संबुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में क्या अंतर होता है? जबकि सम्यक संबुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करने वाले, मार्गविदु और मार्गकोविद होते हैं, प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

उन्होंने पूरण-कस्सप की इस मान्यता को असंगत ठहराया और बतलाया कि सत्त्वों के संक्लेश के लिए कोई हेतु, प्रत्यय नहीं होता; बिना हेतु, प्रत्यय के सत्त्व संक्लेश में पड़ते हैं; सत्त्वों की विशुद्धि के लिए कोई हेतु, प्रत्यय नहीं होता; बिना हेतु, प्रत्यय के सब विशुद्ध होते हैं। उन्होंने अपने कथन का स्पष्टीकरण भी किया।

उन्होंने यह भी प्रकटकिया कि तीन निरुक्ति-पथ न बदले हैं, न बदले थे और न बदलेंगे। कौनसे तीन? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान में से किसीके भी विद्यमान होने पर 'है' –ऐसी संज्ञा होना; और 'था', 'होगा' –ऐसी संज्ञा न होना। इसके निरुद्ध होने पर 'था' –ऐसी संज्ञा होना; और 'है', 'होगा' –ऐसी संज्ञा न होना। इसके अभी उत्पन्न न होने पर 'होगा' –ऐसी संज्ञा होना; और 'है', 'था' – ऐसी संज्ञा न होना।

### ७. अरहन्त-वग्ग

[सुत्त – उपादियमान, मञ्ञमान, अभिनन्दमान, अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, अनत्तनिय, रजनीयसण्ठित, राध, सुराध।]

समय-समय पर भगवान के समक्ष उपस्थित होकर किसी-किसीभिक्षु ने उन्हें संक्षेप में ऐसा धर्मोपदेश देने के लिए कहा जिसे सुनकर वे एकांत में, अकेले अप्रमत्त, आतापी और दृढ संकल्प वाले होकर विहार कर सकें।

भगवान ने उन्हें इस प्रकारके उपदेश दिये, जैसे कि उपादान करता हुआ मार के बंधन में बँधा रहता है, उपादान न करता हुआ उस पापी से बचा रहता है; मान्यता मानने वाला उसके बंधन में बँधा रहता है, मान्यता न मानने वाला उससे बचा रहता है; अभिनंदन करने वाला भी बँधा, और अभिनंदन न करने वाला छूटा रहता है; अनित्य, दुःख, अनात्म के प्रति छंद को त्याग देना चाहिए; इत्यादि।

इन धर्मोपदेशों कासही आशय समझते हुए और एकांत में, अकेले अप्रमत्त, आतापी और दृढ़ संकल्पवाले होकरविहार करतेहुए वे सभी भिक्षु अरहंत हुए।

भगवान ने आयुष्मान राध को बतलाया कि क्या जानकर, देखकर इस विज्ञानयुक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार तथा मानानुशय नहीं होते, और आयुष्मान सुराध को बतलाया कि कैसेसभी निमित्तों में अहंकार, ममकार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त हो जाता है। ये दोनों आयुष्मान भी समय आने पर अरहंत अवस्था को प्राप्त हुए।

### ८. खज्जनीय-वग्ग

[सुत्त – अस्साद, समुदय, दुतियसमुदय, अरहन्त, दुतियअरहन्त, सीह, खज्जनीय, पिण्डोल्य, पालिलेय्य, पुण्णम।]

भगवान ने समय-समय पर कि ये गये अपने इन उपदेशों को फि र दोहराया है कि –

अज्ञानी व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव (दोष) तथा इनसे निःसरण (छुटकारे) को, यथार्थतः, प्रज्ञापूर्वक नहीं जानता है। ज्ञानी व्यक्ति इन्हें, यथार्थतः, प्रज्ञापूर्वक जानता है।

रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूं, न मेरी आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जानना चाहिए।

आर्यश्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त कर लेता है। निर्वेद प्राप्त करने से विरक्त, और विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। तब उसे भान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था हो कर लिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है'।

भगवान ने कहा कि जितने सत्त्वावास, भवाग्र हैं, उनमें अरहंत ही सर्वश्रेष्ठ और अग्रणी होते हैं। पांच स्कंधों के उदय-व्यय से संबंधित मेरे धर्मोपदेश को सुनकर देवगण भी भयभीत हो जाते हैं कि अरे! हम अ-नित्य, अ-ध्रुव, अ-शाश्वत होते हुए भी अपने आप को नित्य, ध्रुव और शाश्वत माने बैठे हैं और सत्काय के फेर में पड़े हैं।

उन्होंने कहा कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण अपने अनेक पूर्वजन्मों को स्मरण करते हैं, वे वस्तुतः सभी पांच उपादान-स्कंधों को या इनमें से किसी एक को स्मरण करते हैं। 'पूर्व-काल में मैं ऐसे रूप वाला था' – यह स्मरण करता हुआ कोई रूप को ही स्मरण करता है; और यही वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान के बारे में भी होता है। फि र उन्होंने यह भी समझाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को ऐसा क्यों कहते हैं।

एक अवसर पर भगवान भिक्षुसंघ को अपने पास से हटाकर भिक्षाटन के उपरांत अपने ध्यान में लग गये। परंतु फि र यह सोचकर कि मुझे न देखकर कहीं नव-प्रव्रजित भिक्षुओं के मन में कोई अन्यथाभाव न आ जाय, उन्होंने भिक्षुसंघ को अपने सामने बैठा कर कहा –

* सभी वृत्तियों में हीन है भिक्षा-वृत्ति, परंतु आप लोग सारे दुःखों से छुटकारा पाने के उद्देश्य से अपना स्वाभिमान त्याग कर इसे अपनाये हुए हैं।

* लोभी, विलासी, दुष्ट संकल्पवाला, भ्रांतचित्त, मूढ़-स्मृति, असंप्रज्ञ कुलपुत्र दोहरी मार सहता है –वह गृहस्थ के भोगों से भी वंचित रहता है और श्रमणभाव को भी पूरा नहीं कर पाता।

* तीन अकुशल वितर्क हैं – काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क तथा विहिंसा-वितर्क। ये तीनों वितर्क चार स्मृति-प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठापित चित्त के साथ विहार करने वाले अथवा अनिमित्त समाधि की भावना करने वाले में पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं।

* अनिमित्त समाधि की भावना करना बड़ा फलप्रद होता है; इत्यादि।

एक अन्य अवसर पर भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि मैंने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि धर्म क्या होता है; चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या होते हैं। फिर भी एक भिक्षु के मन में ऐसा वितर्क उठा है कि कैसे जानने वाले के, देखने वाले के आस्रवों का क्षय होता है?

भगवान ने स्पष्ट किया कि कोई अज्ञानी व्यक्ति कैसे अपनी मिथ्या धारणाओं के फलस्वरूप तरह-तरह के संस्कार बनाता है। इन संस्कारों का निदान है अविद्यापूर्वक संस्पर्श से होने वाली वेदना, जिससे अज्ञानी को तृष्णा, और उससे संस्कार, उत्पन्न होता है। यह तृष्णा भी अनित्य, संस्कृत और कारण से उत्पन्न होती है। वेदना, संस्पर्श और अविद्या भी अनित्य, संस्कृत और कारण से उत्पन्न होते हैं। इन्हें इस प्रकार जानने वाले के, देखने वाले के आस्रवों का क्षय होता है।

एक उपोसथ के अवसर पर भगवान ने एक भिक्षु के अनेक प्रश्नों का समाधान किया, यथा –पांच उपादान-स्कंधों का मूल क्या है; क्या उपादान और पांच उपादानस्कंध एक ही होते हैं या अलग-अलग; स्कंधों को 'स्कंध' क्यों कहते हैं; विभिन्न स्कंधों की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु, प्रत्यय है; सत्कायदृष्टि कैसे होती है; इत्यादि।

## ९. थेर-वग्ग

[सुत्त – आनन्द, तिस्स, यमक, अनुराध, वक्कलि, अस्सजि, खेमक, छन्न, राहुल, दुतियराहुल।]

आयुष्मान आनन्द ने भिक्षुओं को बतलाया कि आयुष्मान मन्ताणि-पुत्र हम नये भिक्षुओं का बड़ा उपकार करते हैं। वे उपदेश देते हैं कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान के उपादान के कारण 'अस्मि' होता है, अनुपादान के कारण नहीं। उनके इस उपदेश से मैं स्रोतापन्न हो गया।

एक समय भगवान के चचेरे भाई आयुष्मान तिस्स स्त्यान-मृद्ध (तन-मन के आलस) से अभिभूत हो, बे-मन से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, धर्म के प्रति संशयालु हो गये। उस समय भगवान ने एक सुंदर उपमा देते हुए उनमें पुनः धर्म के प्रति श्रद्धा जगायी।

एक अन्य समय यमक नाम के भिक्षु को यह मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न हुई कि मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को इस प्रकार जानता हूं कि क्षीणास्रव भिक्षु शरीर छूटने पर विनष्ट हो जाते हैं, रहते नहीं हैं। आयुष्मान सारिपुत्त ने उसकी इस मिथ्या-दृष्टि को दूर किया। इससे उसकी समझ में आया कि यदि कोई यह जानना चाहे कि क्षीणास्रव अरहंत भिक्षु के मरने के बाद क्या होता है, तो उसे यह उत्तर देना चाहिए –'रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है, वह दुःख है; जो दुःख है वह निरुद्ध, अस्त हो गया।' आयुष्मान सारिपुत्र ने एक उपमा कह कर इसे और भी सु-स्पष्ट कर दिया।

भगवान ने भी आयुष्मान अनुराध की इस गलत धारणा को दूर किया कि परम पुरुष तथागत मरने के पश्चात, तथागत की इनमें से एक-न-एकस्थिति को प्रज्ञप्त करते हैं –रहता है; नहीं रहता है; रहता भी है और नहीं भी रहता; और न रहता है, न नहीं रहता है। उन्होंने कहा कि मैं दुःख और दुःख के निरोध को ही प्रज्ञप्त किया करता हूं।

एक बार अत्यंत रुग्ण आयुष्मान वक्कलि के अनुरोध पर भगवान उनके पास गये। जब आयुष्मान वक्कलि ने कहा कि आपके दर्शन करने की मेरी बड़ी इच्छा थी परंतु शारीरिक असमर्थता के कारण ऐसा नहीं कर पाया तब भगवान ने उन्हें कहा कि इस गंदगी से भरे शरीर के दर्शन से क्या लाभ? वस्तुतः धर्म का दर्शन मेरा दर्शन और मेरा दर्शन धर्म का दर्शन होता है। फिर वे उन्हें रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान की अनित्यता के बारे में उपदेश देकर वहां से चले गये।

भगवान के चले जाने के पश्चात आयुष्मान वक्कलि के कहने पर उनकी सेवा करनेवाले उन्हें खाटसहित इसिगिलि के पास काळसिला पर ले गये। वहां उन्होंने विमोक्ष में चित्त लगाया और भगवान को संदेश भिजवाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता के बारे में मुझे कोई संशय नहीं है; जो

अनित्य है वह दुःख है, इस बारे में मुझे कोई संशय नहीं है; अनित्य, दुःख और विपरिणामधर्मा के प्रति मुझे छंद, राग, प्रेम नहीं है, इसमें भी मुझे कोई संशय नहीं है। तत्पश्चात उन्होंने अपने आप को शस्त्र मार कर प्राणोत्सर्ग कर दिया।

भगवान भिक्षुओं के साथ इसिगिलि काळसिला के पास गये। वहां उन्होंने उनको दिखलाया कि कुछ धुंआती छाया सभी दिशाओं में उड़ रही है। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह पापी मार है जो कुलपुत्र वक्कलि के विज्ञान को खोज रहा है, जबकि वे परिनिर्वाण पा चुके हैं और उनका विज्ञान कहीं प्रतिष्ठित नहीं है।

एक अन्य अवसर पर अत्यंत रुग्ण आयुष्मान अस्सजि के अनुरोध पर भी भगवान उनके पास गये। वहां पर उन्होंने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता और सुखद, दुःखद तथा अदुःखद-असुखद वेदनाओं को अनासक्त भाव से अनुभव करने के बारे में बतलाया। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसा भिक्षु कायपर्यंत वेदना को अनुभव करता हुआ यह प्रज्ञापूर्वक जानता है – 'मैं कायपर्यंत वेदना अनुभव कर रहा हूं'; जीवनपर्यंत वेदना को अनुभव करता हुआ प्रज्ञापूर्वक जानता है –'मैं जीवनपर्यंत वेदना को अनुभव कर रहा हूं'; और यह भी प्रज्ञापूर्वक जानता है कि शरीर छूटने पर सभी वेदनाएं शांत हो जाने वाली हैं और इनके प्रति कोई आसक्ति रहने वाली नहीं है।

रुग्ण भिक्षु आयुष्मान खेमक ने प्रकट किया कि मैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से संबंधित उपादान-स्कंधों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूं, परंतु फिर भी मैं क्षीणास्रव अरहंत नहीं हूं। मुझे इन पांच उपादान-स्कंधों में 'अस्मि' ('मैं हूं') की बुद्धि है, भले ही मैं नहीं देखता कि 'यह मैं हूं'। इस पर स्थविर भिक्षुओं ने इन्हें समझाया कि आर्यश्रावक के नीचे के पांच बंधन कट जाने पर भी उसे पांच उपादान-स्कंधों के साथ होने वाले 'मैं हूं' का मान, छंद और अनुशय लगा ही रहता है। जब आगे चलकर वह इन उपादान-स्कंधों में उदय और व्यय को देखते हुए विहार करने लगता है, तभी इनके साथ होने वाले 'मैं हूं' का भाव छूटता है।

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान छन्न को समझाया कि 'सभी कुछ है' और 'कुछ नहीं है' –इन दो अंतों में न जाकर भगवान ने प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम का अनुलोम-प्रतिलोम प्रतिपादन करते हुए बीच से धर्म का उपदेश किया है।

भगवान ने आयुष्मान राहुल को समझाया कि कैसे जानते, देखते वाले मनुष्य को विज्ञान वाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार,

मान और अनुशय नहीं होते और कैसे इस अवस्था पर पहुँचा हुआ व्यक्ति द्वंद्व के परे शांत और सुविमुक्त हो जाता है।

## १०. पुप्फ-वग्ग

[सुत्त – नदी, पुप्फ, फेणपिण्डूपम, गोमयपिण्ड, नखसिखा, सुद्धिक, गद्दुलबद्ध,दुतियगद्दुलबद्ध, वासिजट, अनिच्चसञ्ञा।]

भगवान ने कहा कि 'यदि किसी वेगवती नदी के स्रोत में बहता हुआ व्यक्ति नदी के तीर पर उगे हुए कास,कुश,वृक्षादि को पकड़ ले और वे उखड़ जायँ, तो वह व्यक्ति बहुत बड़े खतरे में पड़ जाता है। ऐसे ही जब कोई अज्ञानी व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान में से किसी को भी आत्मा करके जानता है, या इनमें आत्मा को जानता है, और यह उखड़ जाता है, तो उससे वह विपत्ति में पड़ जाता है। जो इन पांच स्कंधों की अनित्यता को जान, देख लेता है, वह विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक जान लेता है कि जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करनाथा सो करलिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है।'

उन्होंने यह भी कहा कि जैसे कमल जल में उत्पन्न होता है और जल में ही बढ़ता है, तो भी जल से अनुपलिप्त ही रहता है। इसी प्रकार बुद्ध भी संसार में रहते हुए संसार को जीत, संसार से अनुपलिप्त रहते हैं।

उन्होंने शरीर की असारता को उपमाओं के माध्यम से प्रकट किया –रूप झाग के पिंड के समान है, वेदना पानी के बुलबुले-समान, संज्ञा मरीचिका-समान, संस्कार कदलीवृक्ष-समान और विज्ञान माया-समान। उन्होंने कहा कि उत्साही भिक्षु इन पांच स्कंधों को निःसार जान दिन और रात स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी बना रहे । वह सभी संयोजनों को छोड़, अपनी शरण आप बने, और मानों सिर में आग लग गयी है ऐसा सोचते हुए निर्वाण की खोज करे।

एक भिक्षु ने भगवान से पूछा कि क्या कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारअथवा विज्ञान ऐसा है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अविपरिणाम-धर्मा हो? भगवान ने कहा –नहीं। फिर उन्होंने कहा कि पूर्वकाल में मैं एक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। मैं चौरासी हजार नगरों में प्रमुख कुसावती नाम की राजधानी में निवास करता था। उस समय मेरे वैभव का कोई ठिकाना न था। परंतु वह सब कुछ अतीत, निरुद्ध, विपरिणत हो गया है। संस्कार ऐसे ही अनित्य, अध्रुव, विपरिणाम-धर्मा तथा आश्वासन-रहित होते हैं। अतः सभी संस्कारों से निर्वेद पा लेना, विरक्त हो जाना ही उचित है।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि अविद्या के अंधकार में पड़े हुए, तृष्णा के बंधन में बँधे हुए और संसार में संधावन करने वाले प्राणियों के दुःख का अंत नहीं होता। जैसे मजबूती से गड़े हुए खूंटे में बँधा हुआ कुत्ता उसी खूंटे के इर्दगिर्द चलता, ठहरता, बैठता अथवा लेटता है, वैसे ही वह अज्ञानी व्यक्ति जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान में से किसी को भी ऐसा समझता है कि 'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है', वह इन्हीं पांच उपादान-स्कंधों के इर्दगिर्द चलता, ठहरता, बैठता अथवा लेटता है। अतः बार-बार आत्म-चिंतन करना चाहिए कि लंबे समय से यह चित्त राग, द्वेष और मोह से मलिन है। चित्त की मलिनता से प्राणी मैले और चित्त की निर्मलता से निर्मल होते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं को चार स्मृति-प्रस्थानों, चार सम्यक प्रधानों, चार ऋद्धिपादों, पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों तथा आर्य अष्टांगिक मार्ग के अभ्यास को सुदृढ़ करने पर बल दिया। उन्होंने व्यक्त किया कि भावनारत भिक्षु के संयोजन विशेष कठिनाई झेले बिना नष्ट हो जाते हैं।

उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग, रूपराग, भवराग और अविद्या दूर हो जाते हैं, और सारी अस्मिता जड़ से उखड़ जाती है। उन्होंने यह भी समझाया कि अनित्य-संज्ञा की भावना इस प्रकार करनी चाहिए – 'यह रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार अथवा विज्ञान है, यह इसका समुदय और यह इसका अस्त हो जाना है'।

### ११. अन्त-वग्ग

[सुत्त – अन्त, दुक्ख, सक्काय, परिञ्ञेय्य, समण, दुतियसमण, सोतापन्न, अरहन्त, छन्दप्पहान, दुतियछन्दप्पहान।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को जिन विषयों के बारे में उपदेश दिया है, वे हैं –

* चार अंत (सत्काय-अंत, सत्कायसमुदय-अंत, सत्कायनिरोध-अंत तथा सत्कायनिरोधगामिनी प्रतिपदा-अंत)।

* दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा।

* परिज्ञेय धर्म, परिज्ञा तथा परिज्ञाता पुद्गल।

* पांच उपादान-स्कंध, इनका समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारा)।

इनमें 'सत्काय-अंत' है पांच उपादान-स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान), 'सत्कायसमुदय-अंत' है पुनर्जन्म दिलाने वाली तृष्णा (काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा), 'सत्कायनिरोध-अंत' है इस तृष्णा का परित्याग, और 'सत्कायनिरोधगामिनी प्रतिपदा' है आर्य अष्टांगिक मार्ग। 'दुःख', 'दुःखसमुदय', 'दुःखनिरोध' तथा 'दुःखनिरोधगामिनी' को भी इसी प्रकार समझना चाहिए। 'परिज्ञेय धर्म' भी हैं यही पांच उपादान-स्कंध, 'परिज्ञा' राग द्वेष तथा मोह का क्षय; 'परिज्ञाता पुद्गल' अरहंत। इन पांच उपादान-स्कंधों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः जानने वाला व्यक्ति 'स्रोतापन्न' हो जाता है। जो इन्हें यथार्थतः जान उपादानरहित हो जाता है, वह क्षीणास्रव अरहंत कहलाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को पांच उपादान-स्कंधों के प्रति तृष्णा, उपादान, अभिनिवेश एवं अनुशय छोड़ देने के लिए कहा है। इससे ये कटी हुई जड़ वाले ताड़वृक्ष के समान पुनः पनपने योग्य नहीं रहते।

## १२. धम्मकथिक-वग्ग

[सुत्त – अविज्जा, विज्जा, धम्मकथिक, दुतियधम्मकथिक, बन्धन, परिपुच्छित, दुतियपरिपुच्छित, संयोजनिय, उपादानिय, सीलवन्त, सुतवन्त, कप्प, दुतियकप्प।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि –

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान और इनके समुदय, निरोध एवं निरोध करानेवाले मार्ग को प्रज्ञापूर्वक न जानने को 'अविद्या' कहते हैं। इनको प्रज्ञापूर्वक जान लेना 'विद्या' कहलाती है।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से विरक्त होने और उनके निरोध के बारे में धर्मोपदेश करने वाले को 'धर्मकथिक' कहते हैं। विरक्ति एवं निरोध के लिए यत्नशील व्यक्ति को 'धर्मानुधर्मप्रतिपन्न', और इस प्रकार उपादानरहित होकर विमुक्त हुए व्यक्ति को कहसकते हैं 'इसी जीवन में निर्वाण-प्राप्त भिक्षु'।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से तादात्म्य स्थापित करने वाला व्यक्ति इनके बंधन में बँधा हुआ, गांठ-गठीला, ओर-छोर को न देखने वाला, बँधा हुआ उत्पन्न होता है, बँधा हुआ मरता है और बँधा हुआ ही इस लोक से परलोक को जाता है। तादात्म्य स्थापित न करने वाला व्यक्ति इससे विपरीत स्थिति वाला होकर पूरी तरह से दुःखविमुक्त हो जाता है।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी को भी 'यह मेरा अथवा मेरी है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है', ऐसा नहीं समझना चाहिए। इन्हें इस प्रकार यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझ लेने से नया जन्म नहीं होता।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान 'संयोजनीय धर्म' कहलाते हैं, और इनके प्रति होने वाला छंदराग कहलाता है 'संयोजन'। रूपादि को 'उपादानीय धर्म' भी कहते हैं, और इनके प्रति होने वाले छंदराग को 'उपादान'।

आयुष्मान महाकोट्ठिक के प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें बतलाया कि शीलवान अथवा श्रुतवान भिक्षुओं को पांच उपादान-स्कंधों को अनित्य, दुःख, रोग, व्रण, शल्य, पाप, अंतराय, पराया, झूठा, शून्य एवं अनात्म समझना चाहिए। हो सकता है कि ऐसा करते रहने से भिक्षु स्रोतापन्न हो जाए, स्रोतापन्न सकृदागामी, सकृदागामी अनागामी और अनागामी अरहंत बन जाए। अरहंत को भी उपादान-स्कंधों को ऐसे ही समझना चाहिए, भले ही उसका यह अभ्यास इस जीवन में सुखविहार करने और स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी बने रहने के लिए ही होगा।

भगवान ने आयुष्मान कप्प को समझाया कि कैसे जानने वाले और और देखने वाले को इस विज्ञानयुक्त काया के भीतर वा बाहर सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार, मान तथा अनुशय नहीं होते हैं और कैसे मन द्वंद्व से परे हो, शांत और विमुक्त हो जाता है।

### १३. अविज्जा-वग्ग

[सुत्त - समुदयधम्म, दुतियसमुदयधम्म, ततियसमुदयधम्म,
अस्साद, दुतियअस्साद, समुदय, दुतियसमुदय,कोट्ठिक,
दुतियकोट्ठिक, ततियकोट्ठिक।]

इन सुत्तों में बतलाया गया है कि 'अविद्या' क्या होती है और कोई अविद्या में कैसे पड़ता है? और इसके विपरीत, 'विद्या' क्या होती है और क्या होने से कोई विद्या-प्राप्त कहलाता है?

'अविद्या' है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के -

* समुदय एवं व्यय के स्वभाव को यथार्थतः न जानना;

* आस्वाद, दोष तथा निःसरण को यथार्थतः न जानना;

* समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष, निःसरण को यथार्थतः न जानना;

* अस्तित्व, समुदय, निरोध एवं इनका निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को यथार्थतः न जानना।

ऐसा होने से कोई अविद्या में पड़ता है।

यदि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में उक्त प्रकार की जानकारी यथार्थतः हो जाती है, तो वह 'विद्या' कहलाती है। ऐसा होने से कोई व्यक्ति विद्या-प्राप्त कहलाता है।

## १४. कुक्कुळ-वग्ग

[सुत्त - कुक्कुळ, अनिच्च, दुतियअनिच्च, ततियअनिच्च, दुक्ख, दुतियदुक्ख, ततियदुक्ख, अनत्त, दुतियअनत्त, ततियअनत्त, निब्बिदाबहुल, अनिच्चानुपस्सी, दुक्खानुपस्सी, अनत्तानुपस्सी।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि -

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को धधकता हुआ जानो। इन्हें इस प्रकार जानने से आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, जिससे विरक्त हो जाता है, और विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। तब उसे भान होता है -'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञा से जान लेता है -'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है'।

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य हैं। जो अनित्य है, उससे छंद, राग एवं छंद-राग को दूर करना चाहिए।

दुःख से छंद, राग एवं छंद-राग को दूर करना चाहिए।

अनात्म से छंद, राग एवं छंद-राग को दूर करना चाहिए।

पांच उपादान-स्कंधों के प्रति वैराग्य, अनित्यता तथा अनात्मता का भाव रखते हुए विहार करे। ऐसा करने से वह इन सभी से मुक्त हो, जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर, दुःख-मुक्त हो जाता है।

## १५. दिट्ठि-वग्ग

[सुत्त - अज्झत्त, एतंमम, सोअत्ता, नोचमेसिया, मिच्छादिट्ठि, सक्कायदिट्ठि, अत्तानुदिट्ठि,अभिनिवेस, दुतियअभिनिवेस, आनन्द।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान के होने से, इनके उपादान से भीतर सुख-दुःख होता है; कोई समझता है –'यह मेरे हैं, यह मैं हूं, ये मेरी आत्मा हैं'; अनेक प्रकार की मिथ्या दृष्टियां होती हैं; संयोजन, अभिनिवेश, विनिबंध, अध्यवसान होते हैं। जो इन्हें इस प्रकार प्रज्ञापूर्वक जान लेते हैं, वे विमुक्ति को प्रात हो, समझ जाते हैं कि अब पुनः उन्हें यहाँ आना नहीं है।'

## २. राधसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है जिनमें छियालीस सुत्त हैं।

### १. पठम-वग्ग

[सुत्त – मार, सत्त, भवनेत्ति, परिञ्ञेय्य, समण, दुतियसमण,
सोतापन्न, अरहन्त, छन्दराग, दुतियछन्दराग।]

भगवान ने आयुष्मान राध को समझाया कि जिसे लोग 'मार, मार' कहते हैं वह क्या होता है? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी के भी होने से मार होता है, या मारने वाला, या वह जो मरता है। अतः इनको मार, रोग, व्रण, शल्य, दुःख के रूप में देखना चाहिए। इन्हें इस प्रकार देखना ही इनका सम्यक दर्शन करना है। सम्यक दर्शन से निर्वेद होता है, निर्वेद से वैराग्य, वैराग्य से विमुक्ति और विमुक्ति से निर्वाण। ब्रह्मचर्य का अंतिम उद्देश्य निर्वाण ही होता है।

अलग-अलग अवसरों पर भगवान ने आयुष्मान राध को यह भी समझाया कि कोई व्यक्ति सक्त (आसक्त) कैसे होता है; भवनेत्री और भवनेत्रीनिरोध क्या होता है; परिज्ञेय धर्म, परिज्ञा और परिज्ञाता पुद्गल से क्या आशय लिया जाता है; इत्यादि।

### २. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – मार, मारधम्म, अनिच्च, अनिच्चधम्म, दुक्ख, दुक्खधम्म,
अनत्त, अनत्तधम्म, खयधम्म, वयधम्म, समुदयधम्म,
निरोधधम्म।]

इन सुत्तों में भगवान ने समझाया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को मार, मारधर्मा, अनित्य, अनित्यधर्मा, दुःख, दुःखधर्मा, अनात्म, अनात्मधर्मा, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, समुदयधर्मा अथवा निरोधधर्मा मानकर आर्यश्रावक इनसे निर्वेद प्राप्त कर लेता है, निर्वेद प्राप्त कर विरक्त हो जाता है, विरक्त हो विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे भान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – "जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।"

## ३. आयाचन-वग्ग

[सुत्त - मारादिसुत्तएकादसक, निरोधधम्म।]

आयुष्मान राध ने भगवान से कहा कि मुझे ऐसे धर्म का उपदेश करें जिसे सुनकर मैं अकेला, एकांतसेवी हो, अप्रमत्त बना रहकर, प्रयत्नपूर्वक तप करता हुआ, आत्मसंयमी हो विहार करूं। इस पर उन्होंने इन्हें इन-इन के प्रति छंद, राग एवं छंद-राग का प्रहाण करने के लिए कहा -मार, मारधर्म, अनित्य, अनित्यधर्म, दुःख, दुःखधर्म, अनात्म, अनात्मधर्म, क्षयधर्म, व्ययधर्म, समुदयधर्म एवं निरोधधर्म।

## ४. उपनिसिन्न-वग्ग

[सुत्त - मारादिसुत्तएकादसक, निरोधधम्म।]

इन सुत्तों में भगवान ने आयुष्मान राध को बतलाया कि इन-इन के प्रति छंद, राग एवं छंद-राग को हटाना चाहिए -मार, मारधर्म, अनित्य, अनित्यधर्म, दुःख, दुःखधर्म, अनात्म, अनात्मधर्म, क्षयधर्म, व्ययधर्म, समुदयधर्म और निरोधधर्म।

## ३. दिट्ठिसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है जिनमें छियानवे सुत्त हैं।

### १. सोतापत्ति-वग्ग

[सुत्त – वात, एतंमम, सोअत्ता, नोचमेसिया, नत्थिदिन्न, करोतो, हेतु, महादिट्ठि, सस्सतदिट्ठि, असस्सतदिट्ठि,अन्तवा, अनन्तवा, तंजीवंतंसरीरं, अञ्ञंजीवंअञ्ञंसरीरं, होतितथागतो, नहोतितथागतो, होतिचनचहोतितथागतो, नेवहोतिननहोतितथागतो।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया है कि किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से इस प्रकार की मिथ्या दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, यथा हवाएं नहीं चलती हैं, नदियां नहीं बहती हैं, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है, जो आत्मा है सो लोक है, अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता, यह लोक शाश्वत है, अशाश्वत है, अंतवान है, अनंत है, इत्यादि।

उन्होंने बतलाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के होने से, इनके उपादान से, इनके अभिनिवेश से ऐसा होता है। इनकी अनित्यता, दुःखता तथा परिवर्तनशीलता को जान लेने से ये मिथ्या दृष्टियां नहीं होती हैं। जिस आर्यश्रावक की इनके तथा दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग के प्रति शंका दूर हुई रहती है वह 'स्रोतापन्न' कहलाता है। वह धर्म से च्युत न होने वाला और निश्चित रूप से संबोधि प्राप्त करने वाला होता है।

### २. दुतियगमन-वग्ग

[सुत्त –वात....। नेवहोतिननहोति, रूपीअत्ता, अरूपीअत्ता, रूपीचअरूपीचअत्ता, नेवरूपीनारूपीअत्ता,एकन्तसुखी, एकन्तदुक्खी, सुखदुक्खी, अदुक्खमसुखी।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के होने से, इनके उपादान से, इनके अभिनिवेश से अनेक प्रकार की पूर्व-वर्णित मिथ्या दृष्टियों के अतिरिक्त इस प्रकार की मिथ्या दृष्टियां भी होती हैं, जैसे मरने के उपरांत आत्मा रूप वाला अरोग हो जाता है, बिना रूप

वाला अरोग हो जाता है, रूप वाला और बिना रूप वाला अरोग हो जाता है, न रूप वाला और न बिना रूप वाला अरोग हो जाता है, इत्यादि। परंतु रूप, वेदनादि की अनित्यता, दुःखता तथा परिवर्तनशीलता को जान लेने से ये मिथ्या दृष्टियां नहीं होती हैं। इस तरह दुःख के होने से, दुःख के उपादान से, दुःख के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या दृष्टियां उत्पन्न होती हैं।

### ३. ततियगमन-वग्ग

[सुत्त - नवात. . . अदुक्खमसुखी।]

इन सुत्तों में भी पूर्ववत मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति के बारे में समझाते हुए कहा गया है कि जो अनित्य है वह दुःख है; उसके होने से, उसके उपादान से ये दृष्टियां उत्पन्न होती हैं।

### ४. चतुत्थगमन-वग्ग

[सुत्त - नवात. . . अदुक्खमसुखी।]

इन सुत्तों में भी मिथ्या दृष्टियों के बारे में पहले के समान चर्चा करने के पश्चात भगवान द्वारा समझाया गया है कि अतीत, अनागत वा वर्तमान के, भीतरी वा बाहरी, स्थूल वा सूक्ष्म, निकृष्ट वा उत्कृष्ट, दूरस्थ अवथा निकटस्थ सर्व प्रकार के रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को इस प्रकार यथार्थतः जानना चाहिए -'न यह मेरे हैं, न मैं यह हूं, न यह मेरी आत्मा हैं।' ऐसा देख लेने से आर्य-श्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारतथा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त करता है, निर्वेद प्राप्त करने से विरक्त होता है, विरक्त होने से विमुक्त होता है। तब उसे यह ज्ञान होता है - 'मैं विमुक्त हो गया।' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है - 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो करलिया, इससे परे यहां आना नहीं ।'

## ४. ओक्कन्तसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, सम्फस्सजा, रूपसञ्ञा, रूपसञ्चेतना, रूपतण्हा, पथवीधातु, खन्ध।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन अनित्य, परिवर्तनशील और अन्यथाभाव वाले होते हैं। जो इन धर्मों के प्रति इस प्रकार श्रद्धावान वा आश्वस्त होता है, वह श्रद्धानुसारी कहलाता है और वह ऐसा कोई काम नहीं कर सकता जिससे वह निचली योनि को प्राप्त करे और स्रोतापत्ति का फल पाये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाये।

निम्नांकित के बारे में भी ऐसे ही समझना चाहिए –

* रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, तथा मनो।
* चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, तथा मनः।
* चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।
* रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* पृथ्वीधातु, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा विज्ञान।
* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

## ५. उप्पादसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं –चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, सम्फस्सज, सञ्ञा, सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि चक्षु की उत्पत्ति, स्थिति वा प्रादुर्भाव दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरामरण का प्रादुर्भाव है। यही बात श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन पर भी चरितार्थ होती है।

चक्षु का निरोध, उपशम वा अवसान दुःख का निरोध, रोगों का उपशम और जरामरण का अवसान है। यही बात श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन पर भी चरितार्थ होती है।

निम्नांकित के बारे में भी ऐसे ही समझना चाहिएः –

–रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनो।

–चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।

–चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।

–रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–पृथ्वीधातु, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा विज्ञान।

–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

## ६. किलेससंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, सम्फस्सज, सञ्ञा, सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन में होने वाला छंद-राग चित्त का उपक्लेश होता है, जब इन छः स्थानों में चित्त उपक्लेश-रहित होता है, तब वह नैष्क्रम्य की ओर झुका होता है, नैष्क्रम्य में परिभावित चित्त अभिज्ञा से साक्षात्कार किये जाने योग्य धर्मों में लगता है।

यही स्थिति निम्नांकित के बारे में भी है : –

* रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनो।* चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।* चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः ।* रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* पृथ्वीधातु, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा विज्ञान।* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

## ७. सारिपुत्तसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं – विवेकज, अवितक्क, पीति, उपेक्खा, आकासानञ्चायतन, विञ्ञाणञ्चायतन, आकिञ्चञ्ञायतन, नेवसञ्ञानासञ्ञायतन, निरोधसमापत्ति, सूचिमुखी।

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त को ध्यान से उठकर आते हुए देख आयुष्मान आनन्द ने उनसे कहा कि आपकी इंद्रियां अत्यंत प्रसन्न और मुख की कांति परिशुद्ध है; आज आप कैसे विहार कर रहे थे?

आयुष्मान सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि मैं प्रथम ध्यान का लाभ कर विहार करता था। तब मुझे यह नहीं जान पड़ता था कि मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर रहा हूं, अथवा इसे प्राप्त कर लिया है, अथवा इससे उठ रहा हूं।

वस्तुतः उनके अहंकार, ममंकार, मान के अनुशय क्लेश बहुत पहले ही पूर्णतया नष्ट हो जाने से उन्हें यह जान नहीं पड़ता था। और यह केवल प्रथम ध्यान के समय ही नहीं, अपितु द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ ध्यान, तथा आकाशानंत्यायतन, विज्ञानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तथा संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्थाओं में भी होता था।

एक अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने सूचिमुखी परिव्राजिका को स्पष्ट किया कि कोई कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण वास्तुविद्या, नक्षत्रविद्या, अंगविद्या, संदेशवाहन जैसी मिथ्या आजीविका को अपना कर अपना भरण-पोषण करते हैं, परंतु मैं धर्मपूर्वक भिक्षाटन कर उदर-पोषण करता हूं। यह जान कर वह परिव्राजिका जगह-जगह जाकर लोगों से कहने लगी कि शाक्यपुत्र श्रमण धर्मपूर्वक, अनिंद्य आहार ग्रहण करते हैं; उन्हें भिक्षा दो।

## ८. नागसंयुत्त

इस संयुत्त में पचास सुत्त हैं जिनके नाम हैं – सुद्धिक, पणीततर, उपोसथ, दुतियउपोसथ, ततियउपोसथ, चतुत्थउपोसथ, सुत, दुतियसुत, ततियसुत, चतुत्थसुत, अण्डजदानूपकार(सुत्तदसक), जलाबुजादिदानूपकार(सुत्ततिंसक)।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* नाग-योनियां चार हैं –

१. अंडज,

२. जलाबुज,

३. संस्वेदज, और

४. औपपातिक। ये, उत्तरोत्तर, एक-दूसरे से प्रणीत हैं।

* कुछ नागों के मन में होता है कि हम पहले काय, वाणी और मन से पुण्य और पाप, दोनों प्रकार के कर्म किया करते थे, जिससे हम मरणोपरांत अमुक नाग-योनि में उत्पन्न हुए हैं। अब हम काय, वाणी और मन से अच्छा आचरण करें जिससे मृत्यु के उपरांत स्वर्ग में उत्पन्न होकर सुगति को प्राप्त हों। इसी कारणवश कुछ नाग उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं।

* यदि काय, वाणी और मन से दोनों प्रकार के कर्म करने वाला व्यक्ति नागों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुखबहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी अमुक योनि वाले नागों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति मरणोपरांत जिस नाग-योनि के नागों के बीच उत्पन्न होने की कामना करता हुआ अन्न, पान, वस्त्रादि का दान देता है, वह उसी नाग-योनि के नागों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मरणोपरांत अंडज योनि के नागों के बीच उत्पन्न होने की कामना करने वाला व्यक्ति उक्त प्रकार का दान देता हुआ इन्हीं नागों के बीच उत्पन्न होता है।

## ९. सुपण्णसंयुत्त

इस संयुत्त में छियालीस सुत्त हैं जिनके नाम हैं –सुद्धिक, हरन्ति, द्वयकारी, दुतियादिद्वयकारी (सुत्तन्तिक), अण्डजदानूपकार (सुत्तदसक), जलाबुजादिदानूपकार (सुत्तत्तिंसक)।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* चार सुपर्ण-योनियां हैं –

१. अंडज,

२. जलाबुज,

३. संस्वेदज और

४. औपपातिक।

* इनमें से अंडज सुपर्ण अंडज नागों को, जलाबुज सुपर्ण अंडज और जलाबुज नागों को, संस्वेदज सुपर्ण अंडज, जलाबुज और संस्वेदज नागों को, और औपपातिक सुपर्ण सभी नागों को हर ले जाते हैं।

* यदि काय, वाणी और मन से पाप एवं पुण्य –दोनों प्रकार के कर्म करने वाला व्यक्ति सुपर्णों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुख बहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी अमुक योनि वाले सुपर्णों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति मरणोपरांत जिस किसी योनि के सुपर्णों के बीच उत्पन्न होने की कामना करता हुआ अन्न, पान, वस्त्रादि का दान देता है, वह उसी योनि के सुपर्णों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मरणोपरांत अंडज सुपर्णों के बीच उत्पन्न होने की कामना करने वाला व्यक्ति उक्त प्रकार का दान देता हुआ इन्हीं सुपर्णों के बीच उत्पन्न होता है।

## १०. गन्धब्बकायसंयुत्त

इस संयुत्त में एक सौ बारह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – सुद्धिक, सुचरित, मूलगन्धदाता, सारगन्धादिदाता(सुत्तनवक), मूलगन्धदानूपकार(सुत्तदसक), सारगन्धादिदानूपकार(सुत्तनवुतिक)।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* मूल, सार, फल्गु, त्वचा, पपड़ी, पत्र, पुष्प, फल, रस वा गंध की गंध में अधिवास करने वाले देव 'गंधर्वकायिक देव' कहलाते हैं।

* यदि काय, वाणी और मन से अच्छा आचरण करने वाला व्यक्ति गंधर्वकायिक देवों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुख बहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी इन देवों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति जिस-जिस प्रकार की गंधों का दान करता है, वह मरणोपरांत उस-उस गंध में अधिवास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मूलगंधों का दान करने वाला व्यक्ति मूलगंध में अधिवास करने वाले देवों के बीच।

* यही बात अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गंध, विलेपन, शय्या, आवास तथा प्रदीप के दान पर भी लागू होती है। जिस कामना के साथ इन वस्तुओं का दान किया जाता है, मरणोपरांत तदनुरूप गंधर्वकायिक देवों के बीच उत्पत्ति होती है।

## ११. वलाहक संयुत्त

इस संयुत्त में सत्तावन सुत्त हैं जिनके नाम हैं – सुद्धिक, सुचरित, सीतवलाहकदानूपकार (सुत्तदसक), उण्हवलाहकदानूपकार(सुत्तचालीसक), सीतवलाहक, उण्हवलाहक, अब्भवलाहक, वातवलाहक, वस्सवलाहक।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* शीतवलाहक, उष्णवलाहक, अभ्रवलाहक, वातवलाहक तथा वर्षावलाहक देव 'वलाहककायिक देव' कहलाते हैं,

* यदि काय, वाणी और मन से अच्छा आचरण करने वाला व्यक्ति वलाहककायिकदेवों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुखबहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी इन देवों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति मरणोपरांत जिन-किन्हीं वलाहककायिकदेवों के बीच उत्पन्न होने की कामना करता हुआ अन्न, पान, वस्त्रादि का दान देता है, वह उन-उन देवों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मरणोपरांत शीतवलाहक देवों के बीच उत्पन्न होने की कामना करने वाला व्यक्ति उक्त प्रकार का दान देता हुआ इन्हीं देवों के बीच उत्पन्न होता है।

* जब किन्हीं देवों को ऐसा होता है कि हम अपनी रति से रमण करें, तब उनके चित्त के विनिश्चय के अनुसार वैसी ही स्थिति बन जाती है; जैसे शीतवलाहक देवों को ऐसा होने पर कि हम अपनी रति से रमण करें, उनके चित्त की प्रणिधि के अनुसार शीत हो जाता है।

## १२. वच्छगोत्तसंयुत्त

इस संयुत्त में पचपन सुत्त हैं जिनके नाम हैं – रूपअञ्ञाण, वेदनाअञ्ञाण, सञ्ञाअञ्ञाण, सङ्खारअञ्ञाण, विञ्ञाणअञ्ञाण, रूपअदस्सनादि (सुत्तपञ्चक), रूपअनभिसमयादि (सुत्तपञ्चक), रूपअननुबोधादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पटिवेधादि (सुत्तपञ्चक), रूपअसल्लक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअनुपलक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पच्चुपलक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअसमपेक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पच्चुपेक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पच्चक्खकम्मादि (सुत्तचतुक्क), विञ्ञाण – अप्पच्चक्खकम्मसुत्तं।

वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान से यह जानना चाहा कि संसार में लोक ,जीव वा तथागत को लेकर जो अनेक प्रकार की धारणाएं प्रचलित हैं, उनका क्या कारण है?

भगवान ने कहा कि इनका कारण होता है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान, और इनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले उपाय का अज्ञान । और ऐसे ही इनका अदर्शन, अनभिसमय (स्पष्ट ज्ञान का अभाव), अननुबोध, अप्रतिवेध, असल्लक्षण(अविवेक), अनुपलक्षण, अप्रत्युपलक्षण, असमप्रेक्षण, अप्रत्युपप्रेक्षण और अप्रत्यक्ष कर्म।

## १३. ज्ञानसंयुत्त

इस संयुत्त में पचपन सुत्त हैं जिनके नाम हैं –समाधिमूलक –समापत्ति, ठिति, वुट्ठान, कल्लित, आरम्मण, गोचर, अभिनीहार,सक्कच्चकारी, सातच्चकारी, सप्पायकारी।

समापत्तिमूलक – ठिति, वुट्ठान, कल्लित, आरम्मण, गोचर, अभिनीहार, सक्कच्च,सातच्च, सप्पाय।

ठितिमूलक – वुट्ठानसुत्तादिअट्ठक।

वुट्ठानमूलक – कल्लितसुत्तादिसत्तक।

कल्लितमूलक – आरम्मणसुत्तादिछक्क।

आरम्मणमूलक – गोचरसुत्तादिपञ्चक।

गोचरमूलक – अभिनीहारसुत्तादिचतुक्क।

अभिनीहारमूलक – सक्कच्चसुत्तादितिक।

सक्कच्चमूलक – सातच्चकारीसुत्तादिदुक।

सातच्चमूलक – सप्पायकारी।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि समाधि के क्षेत्र में चार प्रकार के ध्यानी होते हैं –

१. समाधि-कुशल, पर समापत्ति-कुशल नहीं;

२. समापत्ति-कुशल, पर समाधि-कुशल नहीं;

३. न समाधि-कुशल, न समापत्ति-कुशल; और

४. समाधि-कुशल भी, समापत्ति-कुशल भी।

इनमें अंतिम प्रकार का ध्यानी अग्र, श्रेष्ठ, उत्तम प्रकार का होता है।

भगवान ने इसी प्रकार से समाधि के क्षेत्र में ध्यानियों की भिन्न-भिन्न प्रकार की कुशलताओं, क्रियाशीलताओं की तुलना करते हुए निम्नांकित को अग्र, श्रेष्ठ, उत्तम प्रकार का होना बतलाया –

* समाधिकुशलतथा स्थितिकुशल,अथवा उत्थानकुशल,अथवा कल्यकुशल,

अथवा आलंबनकुशल, अथवा गोचरकुशल, अथवा अधिष्ठानकुशल, अथवा सावधानी बरतने वाला, अथवा सततकारी, अथवा सम्प्रेयकारी (उचितकारी)।

* समापत्तिकुशल तथा स्थितिकुशल, अथवा व्युत्थानकुशल (शेष पूर्ववत)।
* स्थितिकुशल तथा व्युत्थानकुशल, अथवा कल्यकुशल (शेष पूर्ववत)।
* व्युत्थानकुशल तथा कल्यकुशल, अथवा आलंबनकुशल (शेष पूर्ववत)।
* कल्यकुशल तथा आलंबनकुशल, अथवा गोचरकुशल (शेष पूर्ववत)।
* आलंबनकुशलतथा गोचरकुशल,अथवा अभिनीहारकुशल(शेष पूर्ववत)।
* गोचरकुशल तथा अभिनीहारकुशल, अथवा सत्कृत्यकारी (शेष पूर्ववत)।
* अभिनीहारकुशल तथा सत्कृत्यकारी, अथवा सातत्यकारी (शेष पूर्ववत)।
* सत्कृत्यकारी तथा सातत्यकारी, अथवा सप्रायकारी।
* सातत्यकारी तथा सप्रायकारी।

इन ध्यानियों की अग्रता, श्रेष्ठता, उत्तमता उसी प्रकार से है जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से भी उसके मांड की अग्रता, श्रेष्ठता, उत्तमत्ता होती है।

# सळायतनवग्ग

## १. सळायतनसंयुत्त

यह संयुत्त उन्नीस वर्गों में विभाजित है जिनमें दो सौ अड़तालीस सुत्त हैं।

### १. अनिच्च-वग्ग

[सुत्त - अज्झत्तानिच्च, अज्झत्तदुक्ख, अज्झत्तानत्त, बाहिरानिच्च, बाहिरदुक्ख, बाहिरानत्त, अज्झत्तानिच्चातीतानागत, अज्झत्तदुक्खातीतानागत, अज्झत्तानत्तातीतानागत, बाहिरानिच्चातीतानागत, बाहिरदुक्खातीतानागत, बाहिरानत्तातीतानागत।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को भीतरी आयतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन) तथा बाहरी आयतनों (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पृष्टव्य तथा धर्म) की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में उपदेश दिए हैं। इनमें से कोई भी आयतन 'न मेरा है, न मैं हूं, न मेरी आत्मा है' -यह यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिए। ऐसा करता हुआ आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है -'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है -'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

उन्होंने यह भी कहा कि अतीत कालऔर अनागत कालके ये सभी आयतन अनित्य, दुःख एवं अनात्म हैं; वर्तमान कालके आयतनों का तो कहना ही क्या है ? इन्हें ऐसा देख आर्यश्रावक अतीतकालीन आयतनों के प्रति अनपेक्ष होता है, अनागतकालीन आयतनों का अभिनंदन नहीं करता और वर्तमान आयतनों के निर्वेद, विराग और निरोध के लिए यत्नशील होता है।

## २. यमक-वग्ग

[सुत्त – पठमपुब्बेसम्बोध, दुतियपुब्बेसम्बोध,
पठमअस्सादपरियेसन, दुतियअस्सादपरियेसन, पठमनोचेअस्साद,
दुतियनोचेअस्साद, पठमाभिनन्द, दुतियाभिनन्द, पठमदुक्खुप्पाद,
दुतियदुक्खुप्पाद।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि मैंने भीतरी तथा बाहरी आयतनों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर और इनसे निःसरण (छुटकारे) को निःसरण के तौर पर यथार्थतः जान लेने के पश्चात ही अपने सम्यक संबुद्ध होने का दावा किया।

उन्होंने बतलाया कि यदि इन आयतनों में आस्वाद न होता, तो प्राणी इनमें अनुरक्त नहीं होते; यदि इनमें दोष नहीं होता, तो वे इनसे निर्वेद न पाते; और यदि इनसे निःसरण न होता, तो वे इनसे निःसृत न होते।

उन्होंने यह भी बतलाया कि आयतनों के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाला सुख-सौमनस्य इनका आस्वाद होता है; इनकी अनित्यता, दुःखता तथा विपरिणामधर्मता इनका दोष होता है; और इनके प्रति होने वाले छंद-राग का प्रहाण इनसे होने वाला निःसरण (छुटकारा) है।

उनका यह भी कथन था कि आयतनों का अभिनंदन करना दुःख का ही अभिनंदन करना है। दुःख का अभिनंदन करना दुःख से मुक्त न होना है। आयतनों की उत्पत्ति, स्थिति, अभिनिवृत्ति, प्रादुर्भाव से ही दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति तथा जरा-मरण का प्रादुर्भाव होता है। इनका निरोध, उपशमन, अस्तगमन दुःख का निरोध, रोगों का उपशमन तथा जरा-मरण का अस्तगमन होता है।

## ३. सब्ब-वग्ग

[सुत्त – सब्ब, पहान, अभिञ्ञापरिञ्ञापहान, पठमअपरिजानन,
दुतियअपरिजानन, आदित्त, अद्धभूत, समुग्घातसारुप्प,
पठमसमुग्घातसप्पाय, दुतियसमुग्घातसप्पाय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि 'सर्व' होता है – चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण और गंध, जिह्वा और रस, काय और स्प्रष्टव्य तथा मन और धर्म ।

उन्होंने यह भी बतलाया कि सर्व-प्रहाण के योग्य धर्म होते हैं – चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श, चक्षुसंस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना; और इसी प्रकार श्रोत्र, शब्द; घ्राण, गंध; जिह्वा, रस; काय, स्प्रष्टव्य; तथा मन, धर्म से आरंभ कर इनके आगे के धर्म।

भगवान ने कहा कि 'सर्व' को पूरी तरह से जाने-बूझे बिना, इससे विरक्त हुए बिना और बिना इसे छोड़े दुःखों से छुटकारा पा लेना संभव नहीं है। पर इसे पूरी तरह से जानने-बूझने, इससे विरक्त हो जाने और इसको छोड़ देने से दुःखों से छुटकारा पा लेना संभव होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि 'सर्व' जल रहा है, 'सर्व' अंधा है। फिर यह भी समझाया कि क्या जल रहा है, क्या अंधा है और किससे जल रहा है, किससे अंधा है? इनसे निर्वेद प्राप्त कर आर्यश्रावक विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

इसी संदर्भ में भगवान ने सारी मान्यताओं पर कुठाराघात करनेवाले मार्ग को भी प्रज्ञप्त किया।

### ४. जातिधम्म-वग्ग

[सुत्त – जातिधम्म, जराधम्म, व्याधिधम्म, मरणधम्म, सोकधम्म, सङ्किलेसिकधम्म, खयधम्म, वयधम्म, समुदयधम्म, निरोधधम्म।]

इन सुत्तों में भगवान ने चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और चक्षुसंस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना को जातिधर्मा, जराधर्मा, व्याधिधर्मा, मरणधर्मा, शोकधर्मा, संक्लेशिकधर्मा, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, समुदयधर्मा तथा निरोधधर्मा बतलाया है; और ऐसे ही श्रोत्र, शब्द, श्रोत्रविज्ञानादि को भी। उन्होंने यह भी कहा है कि इन्हें इस प्रकार देखने वाला आर्यश्रावक विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है कि यह मेरा अंतिम जन्म है।

### ५. सब्बअनिच्च-वग्ग

[सुत्त – अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, अभिञ्ञेय्य, परिञ्ञेय, पहातब्ब, सच्छिकातब्ब, अभिञ्ञापरिञ्ञेय्य, उपद्दुत, उपस्सट्ठ।]

इन सुत्तों में भगवान ने चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और चक्षुसंस्पर्श से

उत्पन्न होने वाली वेदना को अनित्य, दुःख, अनात्म, अभिज्ञेय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, साक्षात्करणीय, अभिज्ञा से परिज्ञेय, उपद्रुत और दमित बतलाया है; और ऐसे ही श्रोत्र, शब्द, श्रोत्रविज्ञानादि को भी। उन्होंने यह भी कहा है कि इन्हें इस प्रकार देखने वाला आर्यश्रावक विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है कि यह मेरा अंतिम जन्म है।

### ६. अविज्जा-वग्ग

[सुत्त – अविज्जापहान, संयोजनपहान, संयोजनसमुग्घात, आसवपहान, आसवसमुग्घात, अनुसयपहान, अनुसयसमुग्घात, सब्बुपादानपरिञ्ञा, पठमसब्बुपादानपरियादान, दुतियसब्बुपादानपरियादान।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और चक्षुसंस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना को अनित्य जान, देख लेने से अविद्या दूर होती है और विद्या उत्पन्न होती है। यही बात श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के धर्मों को लेकर भी होती है। इसी अनित्यता को जानने, देखने से संयोजन दूर होते हैं। इनकी अनात्मता को जानने, देखने से संयोजन उखड़ जाते हैं। आस्रव और अनुशय भी इसी प्रकार इनकी अनित्यता, अनात्मता को जानने, देखने से दूर होते, उखड़ते हैं।

भगवान ने उन्हें सभी उपादानों की परिज्ञा और पर्यादान के बारे में भी उपदेश दिया।

### ७. मिगजाल-वग्ग

[सुत्त – पठममिगजाल, दुतियमिगजाल, पठमसमिद्धिमारपञ्हा, समिद्धिसत्तपञ्हा, समिद्धिदुक्खपञ्हा, समिद्धिलोक पञ्हा, उपसेनआसीविस, उपवाणसन्दिट्ठिक , पठमछफस्सायतन, दुतियछफस्सायतन, ततियछफस्सायतन।]

भगवान ने आयुष्मान मिगजाल को बतलाया कि तृष्णा के जाल में फँसा हुआ भिक्षु 'सद्वितीयविहारी' कहलाता है और तृष्णा तथा संयोजन से मुक्त हुआ 'एकविहारी'। नगर से दूर किसी शांत वन में रहने पर भी पहले प्रकार का भिक्षु 'सद्वितीयविहारी' ही कहलाता है, क्योंकि द्वितीय के समान तृष्णा उसके साथ लगी रहती है। जनाकीर्ण ग्राम के मध्य रहने पर भी दूसरे प्रकार का भिक्षु 'एकविहारी' ही कहलाता है, क्योंकि द्वितीय के समान उसके साथ रहने वाली

तृष्णा प्रहीण हो चुकी होती है। भगवान ने उन्हें यह भी समझाया कि तृष्णा के समुदय से दुःख का समुदय और इसके निरोध से दुःख का निरोध हो जाता है। उनके उपदेश के अनुरूप एकांत में, अकेले, अप्रमत्त हो, प्रयत्नपूर्वक ध्यानाभ्यास में लगे रहकर आयुष्मान मिगजाल ने शीघ्र ही अरहंत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

आयुष्मान समिद्धि ने भगवान से यह जानना चाहा कि 'मार', 'सत्त्व', 'दुःख', 'लोक' से क्या अभिप्राय होता है? इस पर उन्होंने कहा कि जहां चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुर्विज्ञान से जानने योग्य धर्म होते हैं, वहीं ये होते हैं; और इसी प्रकार जहां श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन को लेकर ऐसे ही आगे के धर्म होते हैं, वहां ये होते हैं।

आयुष्मान उपवाण ने भगवान से जानना चाहा कि 'सांदृष्टिक धर्म' से क्या तात्पर्य होता है? इस पर उन्होंने समझाया कि यदि भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों को ग्रहण कर, बाहरी आयतन और उसके प्रति भीतर-ही-भीतर राग का होना प्रज्ञा से पता चलता हो, अथवा प्रज्ञा से यह पता चलता हो कि बाहरी आयतन तो है परंतु भीतर-ही-भीतर इसके प्रति राग नहीं है, तो इससे धर्म 'सांदृष्टिक' हो जाता है।

एक प्रकरण में बतलाया गया है कि आयुष्मान उपसेन ने लंबे समय से अपने अहंकार, ममकार, अभिमान को इस सीमा तक जड़ से उखाड़ दिया था कि उन्हें ऐसा लगता ही न था कि अमुक इंद्रिय मैं हूं, या मेरी है। इसीलिए सांप से डँसे जाने के पश्चात प्राणांत होते ही उनका शरीर मुट्ठी-भर भूसे के समान बिखर गया।

अंतिम तीन सुत्तों में किसी न किसी भिक्षु ने यह स्वीकारोक्ति की है कि मैं छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष तथा इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः नहीं जानता हूं। इस पर भगवान ने इन भिक्षुओं का समुचित मार्गदर्शन किया।

## ८. गिलान-वग्ग

[सुत्त – पठमगिलान, दुतियगिलान, राधअनिच्च, राधदुक्ख,
राधअनत्त, पठमअविज्जापहान, दुतियअविज्जापहान,
सम्बहुलभिक्खु, लोकपञ्हा, फग्गुनपञ्हा।]

भगवान ने एक भिक्षु के इस कथन को सत्य ठहराया कि उन्होंने राग से

छुटकारा पाने के लिए धर्मोपदेश किया है। उन्होंने एक अन्य भिक्षु के इस कथन को भी सत्य बतलाया कि उनका धर्मोपदेश उपादानरहित निर्वाण की प्राप्ति के लिए है।

उन्होंने आयुष्मान राध को बतलाया कि चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना अनित्य, दुःख एवं अनात्म है। ऐसे ही अनित्य, दुःख एवं अनात्म हैं श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के ,इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्म। अनित्य, दुःख और अनात्म के प्रति लगी हुई इच्छा को हटाना चाहिए।

उन्होंने यह भी बतलाया कि ऊपर उल्लेख-प्राप्त धर्मों की अनित्यता जान, देख लेने वाले की अविद्या नष्ट होती है और विद्या उत्पन्न होती है। सब धर्मों को अभिज्ञात, परिज्ञात कर और सब निमित्तों तथा उपरोक्त धर्मों को ज्ञानपूर्वक देख लेने से भी अविद्या नष्ट और विद्या उत्पन्न होती है।

भगवान ने इस कथन को उचित बतलाया कि दुःख को ठीक से समझ लेने के लिए मेरे शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। और यह दुःख है –चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना, और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के ,इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्म।

भगवान ने 'लोक' शब्द का निर्वचन किया –'जो लुज्जित होता, अर्थात उखड़ता-पखड़ता है'। ऊपर उल्लेख-प्राप्त धर्म लुज्जित होते हैं, अतः 'लोक' हैं। उन्होंने यह भी प्रज्ञप्त किया कि ऐसा कोई भीतरी आयतन नहीं है जिससे अतीतकाल में परिनिर्वाण-लाभ किये छिन्नप्रपंच बुद्ध को जाना जा सके।

### ९. छन्न-वग्ग

[सुत्त – पलोकधम्म, सुञ्ञतलोक, सङ्खित्तधम्म, छन्न, पुण्ण, बाहिय, पठमएजा, दुतियएजा, पठमद्वय, दुतियद्वय।]

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि प्रलोकधर्मा (नाशवान) को आर्यविनय में 'लोक' कहा जाता है। प्रलोकधर्मा हैं चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श, इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना; और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनसे आगे के ,इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्म। चूंकि ये सभी धर्म आत्मा या आत्मीय से शून्य होते हैं, इस कारणवश लोक 'शून्य' कहलाता है।

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महाचुन्द रोगपीड़ित आयुष्मान छन्न का कुशल-क्षेम पूछने के लिए उनके पास गये। आयुष्मान छन्न ने अत्यंत दुःखद वेदनाओं का होना बतलाया और कहा कि मैं अपने आप को शस्त्र मार लूंगा, मैं जीना नहीं चाहता। यह सुनकर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें शस्त्रघात न करने के लिए कहा, परंतु वे बोले –"छन्न भिक्षु निर्दोष (पुनर्जन्म-रहित) शस्त्रघात करेंगे – आप इसे ऐसे धारण करें।"

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान छन्न ने कहा –"मैं चक्षु, चक्षुर्विज्ञान और चक्षुर्विज्ञान द्वारा जानने योग्य धर्मों को – 'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूं', 'यह मेरी आत्मा नहीं है' –ऐसा समझता हूं। और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों के बारे में भी।

"और ऐसा समझने का कारण यह है कि मैं इन इंद्रियों, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों में निरोध को देखता हूं।"

आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महाचुन्द के वहां से चले जाने के थोड़े ही समय पश्चात आयुष्मान छन्न ने शस्त्रघात कर लिया। भगवान से उनकी गति के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा –"अनुपवर्ज्य हो, अर्थात निर्दोष रह कर ही, छन्न भिक्षु ने अपने आप को शस्त्र मारा – इस प्रकार इसे धारण करो।"

एक बार आयुष्मान पुण्ण ने भगवान से प्रार्थना की कि मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुनकर मैं एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी होकर विहार करूं। इस पर उन्होंने कहा कि इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन करने से नंदी (तृष्णा) उत्पन्न होती है। नंदी के समुदय से दुःख का समुदय होता है। इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन न करने से नंदी निरुद्ध हो जाती है। नंदी के निरोध से दुःख का निरोध हो जाता है।

फिर भगवान ने उनसे पूछ लिया कि मेरे इस संक्षिप्त धर्मोपदेश को सुनकर कौन से जनपद में विहार करोगे? इस पर उन्होंने सुनापरान्त जनपद का नाम लिया।

भगवान ने बतलाया कि वहां के लोग तो बहुत चंड स्वभाव के होते हैं। परंतु जब आयुष्मान पुण्ण ने अपनी सहिष्णुता की पराकाष्ठा का परिचय दिया, तब भगवान ने उन्हें उपरोक्त जनपद में वास करने के योग्य बतलाया। वहां विहार करते हुए समय पकने पर उन्होंने परिनिर्वाण-लाभ किया।

आयुष्मान बाहिय ने भी भगवान से संक्षिप्त धर्मोपदेश सुन और एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी हो देशनानुसार विहार करते हुए अरहंत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि एज (चित्त का स्पंदन) रोग, दुर्गंध, कांटा है। तथागत अनेज (निष्कंटक) हो विहरते हैं। यदि तुम भी चाहो, तो ऐसा कर सकते हो। इसके लिए उन्होंने लोक में कुछ भी उपादान न करने पर बल दिया।

उन्होंने भिक्षुओं को 'दो' का उपदेश दिया। 'दो' क्या? चक्षु एवं रूप; श्रोत्र एवं शब्द; घ्राण एवं गंध; जिह्वा एवं रस; काय एवं स्पर्श; और मन एवं धर्म। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'दो' के प्रत्यय से 'विज्ञान' कैसे उत्पन्न होता है।

### १०. सळ-वग्ग

[सुत्त - अदन्तअगुत्त, मालुक्यपुत्त, परिहानधम्म, पमादविहारी, संवर, समाधि, पटिसल्लान, पठमनतुम्हाक, दुतियनतुम्हाक, उदक।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि ये छः स्पर्शायतन अदान्त रहने पर दुःख देते हैं - चक्षुस्पर्शायतन, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन। और सुदान्त होने पर यही छः सुख देते हैं। जब मन इन छः में सुभावित होता है, तब कहींभी स्पर्श होने से कंपायमान नहीं होता है।

उन्होंने आयुष्मान मालुक्यपुत्र को संक्षेप में उपदेश दिया कि जब देखे, सुने, सूंघे, चखे, छुए और जाने जाने योग्य धर्मों में देखने पर देखना-मात्र रहता है, सुनने पर सुनना-मात्र, सूंघने पर सूंघना-मात्र, चखने पर चखना-मात्र, छूने पर छूना-मात्र और जानने पर जानना-मात्र, तब उनमें कोई सक्त नहीं होता, सक्त नहीं होने से उसके पीछे नहीं पड़ता, और उनके पीछे नहीं पड़ने से न तो इहलोक में, न परलोक में और न कहींबीच में ठहरता है। यही दुःख का अंत होता है। आयुष्मान मालुक्य ने इसका विस्तार से अर्थ कहा, जिसे भगवान ने ठीक बतलाया। तदुपरांत उन्होंने एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी हो - भगवान की देशनानुसार विहार करते हुए अरहंत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि -

* परिहानधर्म कैसे होता है, और अपरिहानधर्म कैसे?

* छः अभिभावित आयतन कौन से हैं?

* प्रमादविहारी कैसे होता है, और अप्रमादविहारी कैसे?

* असंवर कैसे होता है, और संवर कैसे?

उन्होंने उनको समाधि तथा प्रतिसंलयन का अभ्यास करने के लिए कहा, क्योंकि इनसे चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना की अनित्यता का यथार्थ ज्ञान होता है, और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के, इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्मों की अनित्यता का भी।

भगवान ने भिक्षुओं को सीख दी कि ऊपर उल्लेख-प्राप्त धर्म तुम्हारे नहीं हैं, अतः उनको छोड़ दो। उनको छोड़ देना हित-सुख का कारण होता है।

उन्होंने बतलाया कि उद्दक रामपुत्त कहा करता था कि मैं वेदगू सर्वजित हूं, मैंने दुःख के मूल को खोद दिया है, जबकि वह न तो वेदगू (वेदनाओं का जानकार) था, न सर्वजित और दुःखमूल उससे चिपटे ही हुए थे। वस्तुतः कोई भिक्षु ही कह सकता है कि मैं वेदगू, सर्वजित हूं, मैंने दुःख के मूल को खोद दिया है। फिर उन्होंने समझाया कि छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष तथा इनसे निःसरण को यथार्थतः जानने वाला वेदगू कहलाता है, इन्हें इस प्रकार जानकर उपादानरहित हो विमुक्त हो जाने वाला सर्वजित कहलाता है, चार महाभूतों से बना हुआ शरीर दुःख है और तृष्णा दुःख-मूल है। जब भिक्षु की तृष्णा प्रहीण हो जाती है –उच्छिन्नमूल, सिर-कटे ताड़ के समान –तब यह कहा जा सकता है कि उसने दुःख के मूल को खोद दिया है।

## ११. योगक्खेमि-वग्ग

[सुत्त – योगक्खेमि, उपादाय, दुक्खसमुदय, लोकसमुदय, सेय्योहमस्मि, संयोजनिय, उपादानिय, अज्झतिकायतनपरिजानन, बाहिरायतनपरिजानन, उपस्सुति।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन द्वारा विज्ञेय रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म बड़े लुभावने होते हैं। तथागत ने उनके प्रहाण के लिए योग किया जिसके फलस्वरूप ये उच्छिन्नमूल, सिर-कटे ताड़ के समान, फिर उगने के अयोग्य हो गये। इस प्रकार का योग करने के कारण तथागत 'योगक्षेमी' कहलाते हैं।

उन्होंने यह भी बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन के होने से, इनके प्रति उपादान करने से भीतरी सुख-दुःख होता है। इनके प्रति अभिनिवेश करने से बड़ा, छोटा या बराबर होने का भाव भी जागने लगता है। पर चक्षु, श्रोत्रादि की अनित्यता, दुःखता या अनात्मता देख लेने से आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है और विमुक्त होने से उसे ज्ञान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।

भगवान ने बतलाया कि दुःख की उत्पत्ति और विनाश क्या होते हैं? दुःख की उत्पत्ति तब होती है जब चक्षु तथा रूप, श्रोत्र तथा शब्द, घ्राण तथा गंध, जिह्वा तथा रस, काय तथा स्प्रष्टव्य, और मन तथा धर्म के प्रत्ययों से चक्षु, श्रोत्रादि का अपना-अपना विज्ञान उत्पन्न होता है; तीनों का मिलना स्पर्श होता है; स्पर्श के प्रत्यय से वेदना और वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। जब इस तृष्णा का पूर्णतया निरोध हो जाता है तब जन्म, मरणादि सारे दुःख-समूह का विनाश हो जाता है। इसी को उन्होंने लोक की उत्पत्ति और विनाश भी कहा।

भगवान ने संयोजनीय धर्मों तथा संयोजन, और उपादानीय धर्मों तथा उपादान पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि चक्षु, श्रोत्रादि संयोजनीय अथवा उपादानीय धर्म हैं, और इनके प्रति होने वाला छंद-राग संयोजन अथवा उपादान।

उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि चक्षु, श्रोत्रादि भीतरी आयतनों और रूप, शब्दादि बाहरी आयतनों को बिना जाने, बिना समझे, उनके प्रति राग को दूर किये बिना और उन्हें छोड़े बिना दुःखों का क्षय कर पाना संभव नहीं है।

### १२. लोक कामगुण-वग्ग

[सुत्त – पठममारपास, दुतियमारपास, लोकन्तगमन, कामगुण, सक्कपञ्ह, पञ्चसिख, सारिपुत्तसद्धिविहारिक, राहुलोवाद, संयोजनियधम्म, उपादानियधम्म।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन द्वारा विज्ञेय रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म लुभावने होते हैं। इनका अभिनंदन करने वाला भिक्षु मार के फंदे में फँस जाता है। इनका अभिनंदन न करने वाला मार के फंदे से बचा रहता है।

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि मैं यह नहीं कहता कि कोई चल-चल कर लोक के अंत को जान, देख अथवा पा सकता है। मैं ऐसा भी नहीं कहता कि बिना लोक का अंत पाए दुःख का अंत हो सकता है। इतना भर कह कर वे आसन से उठकर विहार के भीतर चले गये। भिक्षुओं के अनुरोध पर आयुष्मान आनन्द ने इस संक्षिप्त उपदेश का आशय स्पष्ट किया, जिसे बाद में भगवान ने संगत बतलाया।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान द्वारा भिक्षुओं को किये गये एक संक्षिप्त उपदेश का तात्पर्य उन्हें समझाया। भगवान ने उन्हें कहा था कि पूर्वकाल में अनुभव किये गये पांच कामगुणों के निरुद्ध हो जाने पर भी वहां तुम्हारा चित्त बहुत जाता होगा, अतः उनके प्रति अप्रमत्त और स्मृतिमान हो अपने चित्त की रक्षा करो। उन आयतनों को भी जानो जहां भीतरी आयतन निरुद्ध हो जाते हैं और बाहरी आयतनों की संज्ञा भी रहती नहीं है।

एक समय देवेंद्र सक्क (शक्र) तथा अन्य समय गंधर्वपुत्र पञ्चसिख ने भगवान से इसका कारण जानना चाहा कि कुछ लोग इसी जन्म में परिनिर्वाण-लाभ कर लेते हैं, जबकि अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं। भगवान ने कहा कि चक्षु, श्रोत्रादि भीतरी आयतनों द्वारा विज्ञेय लुभावने रूप, शब्दादि बाहरी आयतनों का अभिनंदन करने से उनमें ठहरा हुआ विज्ञान उपादानकारक हो जाता है। ऐसा होने पर परिनिर्वाण-लाभ नहीं होता है। अभिनंदन न करने से विज्ञान उपादानरहित होता है, जो परिनिर्वाण-लाभ का कारण बनता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने एक भिक्षु को समझाया कि कोई इंद्रियों में संयत, भोजन का मात्रज्ञ और जागरणशील कैसे होता है।

भगवान ने आयुष्मान राहुल को इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों, इन संस्पर्शों के कारण उत्पन्न वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान विषयक ज्ञान की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया। फिर यह कहा कि इस प्रकार देखने से आर्यश्रावक इन सभी से निर्वेद पा लेता है। निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त और विमुक्त होने पर उसे ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

तभी आयुष्मान राहुल का चित्त उपादान न कर, आस्रवों से मुक्त हो गया। उस समय वहां पर विद्यमान कई लाख देवताओं को विरज, विमल धर्मचक्षु –

'जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह सब निरोध स्वभाव वाला भी है' –उत्पन्न हुआ।

## १३. गहपति-वग्ग

[सुत्त – वेसाली, वज्जी, नाळन्द, भारद्वाज, सोण, घोसित, हालिद्दिकानि, नकुलपितु, लोहिच्च, वेरहच्चानि।]

इस वर्ग के पांच सुत्तों में गृहपतियों को भगवान ने बतलाया है कि किस कारणवश कुछ लोग इसी जन्म में परिनिर्वाण-लाभ कर लेते हैं, जबकि अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं।

आयुष्मान पिण्डोल भारद्वाज ने राजा उदेन को बतलाया कि किस कारणवश नयी उम्र वाले भिक्षु सांसारिक दुःखों का परित्याग कर जीवनपर्यंत परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और इस लंबी राह पर आ जाते हैं।

आयुष्मान आनन्द ने गृहपति घोसित को बतलाया कि भगवान ने धातुनानात्व का कथन किस प्रकार किया है। आयुष्मान महाकच्चान ने गृहपति हालिद्दिकानि को स्पष्ट किया कि कैसे धातुनानात्व के प्रत्यय से स्पर्शनानात्व, और स्पर्शनानात्व के प्रत्यय से वेदनानानात्व, उत्पन्न होता है।

आयुष्मान महाकच्चान ने लोहिच्च ब्राह्मण को समझाया कि कोई व्यक्ति इंद्रियों में कैसे संयत और कैसे अ-संयत होता है। इंद्रियों में संयत रहने वाला व्यक्ति इंद्रियों से अपने-अपने विषयों को ग्रहण कर उनके प्रति न तो लगाव करता है, न दुराव। वह जागरूक रह, अप्रामाण्य चित्त वाला होकर विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। इससे उत्पन्न हुए पापमय अकुशल धर्म पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं। इंद्रियों में अ-संयत रहने वाले व्यक्ति के बारे में इससे सब कुछ उल्टा ही होता है।

आयुष्मान उदायी से वेरहच्चानि गोत्र की ब्राह्मणी ने यह जानना चाहा कि किसके होने से अर्हत लोग सुख-दुःख का होना बतलाते हैं, और किसके नहीं होने से सुख-दुःख का नहीं होना बतलाते हैं। इस पर उन्होंने उसे बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन के होने से वे सुख-दुःख का होना बतलाते हैं, और इनके नहीं होने से सुख-दुःख का नहीं होना बतलाते हैं। यह सुनकर भावविभोर हो वह ब्राह्मणी भगवान की शरण में चली गयी, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

## १४. देवदह-वग्ग

[सुत्त – देवदह, खण, पठमरूपाराम, दुतियरूपाराम,
पठमनतुम्हाक, दुतियनतुम्हाक, अज्झत्तानिच्चहेतु,
अज्झत्तदुक्खहेतु, अज्झत्तानत्तहेतु, बाहिरानिच्चहेतु,
बाहिरदुक्खहेतु, बाहिरानत्तहेतु।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि अरहंत-अवस्था-प्राप्त व्यक्तियों को मैं छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद करने के लिए नहीं कहता, क्योंकि अप्रमाद को जीत लेने के कारण वे आगे प्रमाद नहीं कर सकते। छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद करने के लिए मेरा उपदेश शैक्ष्यों के लिए होता है, क्योंकि वे अभी निर्वाण की खोज में लगे होते हैं।

उन्होंने छः स्पर्शायतनिक नाम के नरक की चर्चा करते हुए कहा कि वहां जो कोई भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों को ग्रहण करता है, वह अनिष्ट ही ग्रहण करता है। छः स्पर्शायतनिक नाम के स्वर्ग की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि वहां जो कोई भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों को ग्रहण करता है, वह इष्ट ही ग्रहण करता है। उन्होंने व्यक्त किया कि ब्रह्मचर्यवास का अवसर मिलना भिक्षुओं के लिए बड़ा हितप्रद होता है।

भगवान ने कहा कि देवता और मनुष्य रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म में रत हो इनमें प्रमुदित रहते हैं। जब ये बदलते वा नष्ट होते हैं, तब वे दुःखी होते हैं। तथागत इनके समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छूटने के उपाय) को यथार्थतः जानकर इनमें रत नहीं होते हैं। इसके फलस्वरूप जब ये बदलते वा नष्ट होते हैं, तब भी वे सुखपूर्वक विहार करते रहते हैं। वस्तुतः, जिसे दूसरे लोग सुख कहते हैं, आर्यजन उसे दुःख कहते हैं, और जिसे दूसरे लोग दुःख कहते हैं, आर्यजन उसे सुख कहते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो। उसे छोड़ देना तुम्हारे हित, सुख के लिए होगा। जो तुम्हारे नहीं हैं, वे हैं – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन।

भगवान ने भिक्षुओं को यह भी बतलाया कि चाहे भीतरी आयतन हों या बाहरी, उनकी उत्पत्ति का हेतु अनित्य, दुःख और अनात्म ही होता है। ऐसी दशा में ये आयतन कैसे नित्य, सुख और आत्म हो सकते हैं? जो इन्हें इस प्रकार देख लेता है, वह इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त

होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

## १५. नवपुराण-वग्ग

[सुत्त – कम्मनिरोध, अनिच्चनिब्बानसप्पाय, दुक्खनिब्बानसप्पाय, अनत्तनिब्बानसप्पाय, निब्बानसप्पायपटिपदा, अन्तेवासिक, किमत्थियब्रह्मचरिय, अत्थिनुखोपरियाय, इंद्रियसम्पन्न, धम्मकथिक पुच्छा।]

भगवान ने भिक्षुओं को नये-पुराने कर्मों, कर्म-निरोध और कर्म-निरोध कराने वाले मार्ग का उपदेश दिया। उन्होंने उन्हें निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग को भी उपदेशा।

उन्होंने भिक्षुओं को यह भी बतलाया कि ब्रह्मचर्य का पालन 'बिना अंतेवासी' और 'बिना आचार्य के' किया जाता है। उन्होंने इसका आशय भी स्पष्ट किया कि भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों के संपर्क में आकर यदि किसी को बंधनकारक पापपूर्ण, अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं होते हैं, तो ये अकुशल धर्म उसके अंत:करण में जाकर नहीं बसते हैं, जिससे वह व्यक्ति 'बिना अंतेवासी' कहलाता है। चूंकि ये पापपूर्ण अकुशल धर्म उसके साथ समुदाचरण नहीं करते हैं, अत: वह 'बिना आचार्य वाला' कहलाता है। ऐसा व्यक्ति सुखपूर्वक विहार करता है।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि यदि अन्य मतावलंबी यह जानना चाहें कि किस उद्देश्य से श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, तो उन्हें कहना चाहिए कि दु:ख की परिज्ञा के लिए ऐसा किया जाता है। फिर यह भी समझाया कि वह कौनसा दु:ख है जिसकी परिज्ञा के लिए ऐसा करते हैं।

भगवान ने यह भी समझाया कि कोई व्यक्ति 'इंद्रिय-संपन्न' कैसे होता है, और 'धर्मकथिक' कैसे?

## १६. नन्दिक्खय-वग्ग

[सुत्त – अज्झत्तनन्दिक्खय, बाहिरनन्दिक्खय, अज्झत्तअनिच्चनन्दिक्खय, बाहिरअनिच्चनन्दिक्खय, जीवकम्बवनसमाधि, जीवकम्बवनपटिसल्लान, कोट्ठिक अनिच्च, कोट्ठिक दुक्ख, कोट्ठिक अनत्त, मिच्छादिट्ठिपहान, सक्कायदिट्ठिपहान, अत्तानुदिट्ठिपहान।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि भीतरी तथा बाहरी आयतन अनित्य हैं और इन्हें अनित्य के तौर पर ग्रहण करना 'सम्यक दृष्टि' कहलाता है। कोई व्यक्ति सम्यक दृष्टि होने से निर्वेद उत्पन्न होता है। तृष्णा के क्षय से राग का क्षय और राग के क्षय से तृष्णा का क्षय होता है। तृष्णा और राग के क्षय से चित्त विमुक्त हो जाता है।

उन्होंने भीतरी तथा बाहरी आयतनों का ठीक से चिंतन करने और इनके अनित्य स्वभाव को यथार्थतः जानने पर भी बल दिया।

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को समाधि की भावना करने के लिए कहा, क्योंकि इससे भीतरी और बाहरी आयतनों की अनित्यता का यथार्थ ज्ञान हो जाता है । और ऐसे ही भीतरी आयतनों के विज्ञान, उनके संस्पर्श और उनके संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदनाओं की अनित्यता का भी। एकांत-चिंतन में लगे हुए भिक्षु को भी ऐसा ज्ञान हो जाता है।

भगवान ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को उपदेश दिया कि जो कुछ अनित्य, दुःख वा अनात्म है उससे अपनी इच्छा हटाओ। फिर यह भी समझाया कि अनित्य, दुःख वा अनात्म हैं भीतरी एवं बाहरी आयतन, भीतरी आयतनों के विज्ञान, उनके संस्पर्श और उनके संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदनाएं। इनकी अनित्यता को जानने, देखने से मिथ्यादृष्टि दूर होती है। इनकी दुःखता को जानने, देखने से सत्कायदृष्टि नष्ट होती है। इनकी अनात्मता को जानने, देखने से आत्मानुदृष्टि जाती रहती है।

## १७. सट्ठि-पेय्याल

[सुत्त - अज्झत्तअनिच्चछन्द, अज्झत्तअनिच्चराग, अज्झत्तअनिच्चछन्दराग, दुक्खछन्दादि, अनत्तछन्दादि, बाहिरानिच्चछन्दादि, बाहिरदुक्खछन्दादि, बाहिरानत्तछन्दादि, अज्झत्तातीतानिच्च, अज्झत्तानागतानिच्च, अज्झत्तपच्चुप्पन्नानिच्च, अज्झत्तातीतादिदुक्ख, अज्झत्तातीतादिअनत्त, बाहिरातीतादिअनिच्च, बाहिरातीतादिदुक्ख, बाहिरातीतादिअनत्त, अज्झत्तातीतयदनिच्च, अज्झत्तानागतयदनिच्च, अज्झत्तपच्चुपन्नयदनिच्च, अज्झत्तातीतादियंदुक्ख, अज्झत्तातीतादियदनत्त, बाहिरातीतादियदनिच्च, बाहिरातीतादियंदुक्ख, बाहिरातीतादियदनत्त, अज्झत्तायतनअनिच्च, अज्झत्तायतनदुक्ख, अज्झत्तायतनअनत्त, बाहिरायतनअनिच्च, बाहिरायतनदुक्ख, बाहिरायतनअनत्त।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि -

अनित्य, दुःख एवं अनात्म के प्रति छंद (इच्छा), राग तथा छंदराग को दूर करना चाहिए। अनित्य, दुःख और अनात्म हैं – भीतरी और बाहरी आयतन।

अतीतकालीन, अनागत तथा वर्तमान के भीतरी अथवा बाहरी आयतन अनित्य, दुःख एवं अनात्म हैं। इन्हें ऐसा जानकर आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद के उत्पन्न होने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

जो अनित्य है वह दुःख है, जो दुःख है वह अनात्म है, जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूं, न मेरी आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जानना चाहिए।

## १८. समुद्द-वग्ग

[ सुत्त – पठमसमुद्द, दुतियसमुद्द, बाळिसिकोपम, खीररुक्खोपम, कोट्ठिक, कामभू, उदायी,आदित्तपरियाय, पठमहत्थपादोपम, दुतियहत्थपादोपम।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि आर्यविनय में 'समुद्र' किसे कहते हैं। पुरुष की हर इंद्रिय समुद्र है, जिसका वेग उसके विषय हैं। जो इन वेगों को सहन कर लेता है, वह इन खतरनाक समुद्रों को पार कर,निष्पाप हो, धरती पर जा खड़ा होता है। इंद्रियों से विज्ञेय उनके विषय बड़े लुभावने होते हैं। इसे भी 'समुद्र' कहते हैं। इसी में देव, मार और ब्रह्मा के साथ यह लोक, और श्रमणों-ब्राह्मणों के साथ यह प्रजा, देव, मनुष्य सभी डूबे रहते हैं, और बार-बार दुर्गति को प्राप्त हो संसार से छूट नहीं पाते हैं। जिनके राग, द्वेष और अविद्या छूट जाते हैं, वे ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर पाते हैं।

भगवान ने कहा जिसके राग, द्वेष और मोह प्रहीण नहीं हुए होते, उसकी इंद्रियों का अपने विषयों से संपर्क होते ही वह तुरंत उनमें आसक्त हो जाता है। यह ऐसे ही है जैसे दूधिया रस से भरे पीपल, बड़, पाकड़या गूलर के नये कोमल वृक्ष में कहीं भी तेज़ कुल्हाड़ी मारी जाय, तो वहीं से दूधिया रस फूट पड़े।

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को बतलाया कि न तो भीतरी आयतन बाहरी आयतनों के बंधन हैं, और न बाहरी आयतन भीतरी आयतनों के। दोनों के प्रत्यय से जहां छंदराग उत्पन्न होता है, वहां वही बंधन होता है। यह

ऐसे ही है जैसे एक ही रस्सी से बँधा हुआ काला बैल और सफेद बैल एक दूसरे का बंधन नहीं होता, बल्कि वह रस्सी ही वहां बंधन होती है।

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान उदायी का मार्गदर्शन किया कि भगवान ने 'विज्ञान' को किस प्रकार अनात्म बतलाया है। भिक्षु छः स्पर्शायतनों में न आत्मा और न आत्मीय देखता है। उपादान नहीं करने से उसे त्रास नहीं होता, और त्रास नहीं होने से वह भीतर-ही-भीतर परिनिर्वाण पा लेता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

भगवान ने भिक्षुओं को आदीप्त वाली बात का उपदेश देते हुए कहा कि इंद्रियों को आदीप्त (जलती हुई) वस्तुओं से झुलसा देना अच्छा है, किंतु उनके द्वारा विज्ञेय विषयों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं है। लालच करते, स्वाद देखते मनुष्य की मृत्यु होने पर उसकी दो ही गतियां होती हैं – या तो वह नरक में जाता है, या पशुयोनि में। इस बुरी गति को दृष्टिगत करते हुए इंद्रियों, उनके विषयों, उनके विज्ञानों, संस्पर्शों और तज्जनित वेदनाओं की अनित्यता का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, विरक्त और विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक जान लेता है कि अब आगे कुछ करने को नहीं रहा है।

भगवान ने एक उपमा के द्वारा यह समझाया कि आध्यात्मिक सुख-दुःख किससे होते हैं, और किससे नहीं होते हैं। जैसे हाथ के होने से लेना-देना, पैर के होने से आना-जाना, पर्व (जोड़) के होने से समेटना-पसारना और पेट के होने से भूख-प्यास होती है, वैसे ही इंद्रियों के होने से उनके संस्पर्श के प्रत्यय से भीतरी सुख-दुःख होते हैं। चूंकि हाथ, पैर, पर्व और पेट के न होने से आना-जाना, आदि व्यापार संभव नहीं होते हैं, अतः इंद्रियों के न होने से उनके संस्पर्श के प्रत्यय से भीतरी सुख-दुःख भी नहीं होते हैं।

## १९. आसीविस-वग्ग

[सुत्त – आसीविसोपम, रथोपम, कुम्मोपम, पठमदारुक्खन्धोपम, दुतियदारुक्खन्धोपम, अवस्सुतपरियाय, दुक्खधम्म, किंसुकोपम, वीणोपम, छप्पाणकोपम, यवकलापि।]

भगवान ने भिक्षुओं को एक उपमा के द्वारा यह समझाया कि अरहंत अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति को किस-किस प्रकार की बाधाओं को पार करना पड़ता

है। उन्होंने यह भी बतलाया कि किन तीन धर्मों से युक्त होने पर आस्रवों का क्षय होने लगता है। ये धर्म हैं – (१) इंद्रियों में संयत होना, (२) भोजन का मात्रज्ञ होना, और (३) जागरणशील होना। उन्होंने इन धर्मों का आशय भी समझाया।

भगवान ने भिक्षुओं को कछुए का उदाहरण देते हुए कहा कि जैसे वह अपने अंगों को अपनी खोपड़ी में समेट कर अपने आप को निरापद कर लेता है, वैसे ही तुम्हें भी अपने वितर्कों को अपने भीतर दबाकर अपने आप को सुरक्षित कर लेना चाहिए।

उन्होंने एक अन्य उपमा द्वारा समझाया कि यदि गंगा नदी में बहता हुआ कोई बड़ा लकड़ी का कुंदा न तो नदी के इस पार लगे, न उस पार, न बीच में डूब जाय, न जमीन पर चढ़ जाय, न किसी मनुष्य अथवा अमनुष्य द्वारा छान लिया जाय, न किसी भंवर में पड़ जाय, और न कहीं बीच में रुक जाय, तो वह समुद्र में ही जा गिरेगा क्योंकि गंगा नदी की धारा समुद्र तक जाती है, ऐसे ही तुम भी यदि न तो इस पार लगो, न उस पार, न बीच में डूब जाओ, न जमीन पर चढ़ जाओ, न किसी मनुष्य अथवा अमनुष्य द्वारा छान लिये जाओ, न किसी भँवर में पड़ जाओ, और न कहीं बीच में ही सड़ जाओ, तो तुम निर्वाण में ही जा लगोगे, क्योंकि सम्यक दृष्टि निर्वाण तक ले जाती है। उन्होंने इस उपमा का आशय भी स्पष्ट किया।

कपिलवत्थु में शाक्यों के निमंत्रण पर भगवान ने उनके नव-निर्मित संस्थागार में भिक्षुसंघ के साथ प्रवेश कर बहुत रात तक शाक्यों को धर्मोपदेश दिया। उनके चले जाने के पश्चात भगवान ने आयुष्मान मोग्गल्लान को भिक्षुसंघ को उपदेश देने के लिए कहा, और वे स्वयं विश्राम करने के लिए चले गये। आयुष्मान मोग्गल्लान ने भिक्षुओं को 'अवश्रुत' और 'अनवश्रुत' के बारे में उपदेश दिया।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कोई व्यक्ति कैसे असंयत होता है, और कैसे संयत। किसी भिक्षुविशेष के प्रश्न के उत्तर में उसे समझाया कि किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है।

उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि जब किसी व्यक्ति का चित्त छः स्पर्शायतनों में सीधा हो जाता है, तब वह अध्यात्म में टिकने लगता है। उन्होंने वीणा की उपमा देकर रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के पीछे मुग्ध होने की निरर्थकता को प्रज्ञप्त किया। उन्होंने कायगता स्मृति को सुभावित करने पर भी

बल दिया, जिससे मन प्रिय-अप्रिय के चक्कर में नहीं पड़ता और समता में स्थित होने लगता है।

अंत में भगवान ने भिक्षुओं को इस प्रकार के चिंतन से अपने आप को बचाए रखने के लिए कहा –'मैं हूं', 'यह मैं हूं', 'मैं होऊंगा', 'मैं नहीं होऊंगा', 'मैं रूप वाला होऊंगा', 'मैं बिना रूप वाला होऊंगा', 'मैं संज्ञा वाला होऊंगा', 'मैं बिना संज्ञा वाला होऊंगा', 'मैं न संज्ञा वाला, न बिना संज्ञा वाला होऊंगा'। इस प्रकार का चिंतन कोरी मान्यता है, मात्र मन की चंचलता, झूठा फंदा, प्रपंच, अभिमान।

# २. वेदनासंयुत्त

## १. सगाथा-वग्ग

[सुत्त – समाधि, सुख, पहान, पाताल, दट्ठब्ब, सल्ल,
पठमगेलञ्ञ, दुतियगेलञ्ञ, अनिच्च, फस्समूलक।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को वेदनाओं के बारे में बतलाया है कि –

वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद।

ये अनित्य, संस्कृत, कारण से उत्पन्न, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, विरागधर्मा और निरोधधर्मा होती हैं।

ये स्पर्श से उत्पन्न होती हैं, यही इनका प्रत्यय है। सुखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सुखद वेदना उत्पन्न होती है, और उस स्पर्श के निरोध से यह वेदना निरुद्ध हो जाती है। दुःखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दुःखद वेदना उत्पन्न होती है, और उस स्पर्श के निरोध से यह वेदना निरुद्ध हो जाती है। ऐसे ही अदुःखद-असुखद स्पर्श के प्रत्यय से अदुःखद-असुखद वेदना उत्पन्न होती है, और उस स्पर्श के निरोध से यह वेदना निरुद्ध हो जाती है।

सुखद वेदना को दुःख के तौर पर, दुःखद वेदना को घाव के तौर पर और अदुःखद-असुखद वेदना को अनित्य के तौर पर जानना चाहिए। जो इन्हें इस प्रकार जान लेता है, वह सम्यग्दर्शी कहलाता है और तृष्णा को काट, संयोजनों को दूर कर, अपने दुःख का अंत कर लेता है।

अज्ञानी लोग कहते हैं – 'महासमुद्र में पाताल (जिसका तल न हो) है।' वस्तुतः ऐसा कुछ नहीं है। पाताल से अभिप्राय शरीर पर होने वाली दुःखद वेदना से है। अज्ञानी व्यक्ति शरीर की दुःखद वेदना से पीड़ित हो शोक करता है, क्रंदन करता है और सम्मोह को प्राप्त होता है। इसी को कहते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति पाताल में चला गया, उसे थाह नहीं मिला। इसके विपरीत ज्ञानी आर्यश्रावक शरीर की दुःखद वेदना से अभिभूत नहीं होता है और वह थाह पा लेता है।

चाहे कोई अज्ञानी हो या ज्ञानी – ये दोनों ही तीनों प्रकार की वेदनाओं को अनुभव करते हैं। फिर इन दोनों में क्या भेद हुआ? अज्ञानी व्यक्ति दुःखद वेदना से पीड़ित हो शोक वा क्रंदन करता हुआ सम्मोह को प्राप्त होता है, इससे वह दो

प्रकार की वेदनाएं अनुभव करता है – शारीरिक और मानसिक। ज्ञानी व्यक्ति दुःखद वेदना से अभिभूत नहीं होने से एक ही प्रकार की वेदना अनुभव करता है – शारीरिक, मानसिक नहीं। यही दोनों में भेद है।

सुखद वेदना के राग को, दुःखद वेदना की खिन्नता को, और अदुःखद-असुखद वेदना की अविद्या को दूर करना चाहिए। जो ऐसा कर लेता है, वह सम्यग्दर्शी कहलाता है और तृष्णा को काट, संयोजनों को दूर कर, अपने दुःख का अंत कर लेता है।

जो समाहित, स्मृतिमान, संप्रज्ञानी बुद्ध-श्रावक वेदना, वेदना की उत्पत्ति, जहां ये निरुद्ध हो जाती हैं उसे, और क्षयगामी मार्ग को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, वह वेदनाओं के क्षय होने से वितृष्ण हो परिनिर्वाण-लाभ कर लेता है।

भिक्षु स्मृतिमान और संप्रज्ञानी हो अपने समय की प्रतीक्षा करे। यही मेरी शिक्षा है। (उन्होंने यह भी समझाया कि कोई व्यक्ति कैसे स्मृतिमान होता है, और कैसे संप्रज्ञानी।)

## २. रहोगत-वग्ग

[सुत्त – रहोगत, पठमआकास, दुतियआकास, अगार, पठमआनन्द, दुतियआनन्द, पठमसम्बहुल, दुतियसम्बहुल, पञ्चकङ्ग, भिक्खु।]

इन सुत्तों में वेदनाओं के बारे में भगवान की देशना इस प्रकार है –

सभी वेदनाओं को दुःखद ही समझना चाहिए। संस्कारों के क्षय, व्यय, विराग, निरोध और विपरिणमित होने के स्वभाव को ध्यान में रख कर ऐसा कहा है।

शरीर में विविध प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे आकाश में विविध प्रकार की वायु बहती रहती है – कभी पूर्वी, कभी पश्चिमी, कभी उत्तरी, कभी दक्षिणी, कभी धूल-भरी, कभी धूल-रहित, कभी ठंडी, कभी गर्म, कभी धीमी, कभी तेज।

शरीर में विविध प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे किसी धर्मशाला में आकर लोग रह जाते हैं – पूर्व के भी, पश्चिम के भी, उत्तर के भी, दक्षिण के भी, क्षत्रिय भी, ब्राह्मण भी, वैश्य भी, शूद्र भी।

वेदनाएं तीन प्रकार की हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद। स्पर्श के

समुदय से वेदना का समुदय और स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है । आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना का निरोध कराने वाला मार्ग है।

वेदना के प्रत्यय से होने वाला सुख-सौमनस्य वेदना का आस्वाद होता है। वेदना का अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील होना वेदना का दोष होता है। जो वेदना के प्रति छंद-राग को दूर करना, इसका प्रहाण करना है, वह वेदना का निस्सरण (इससे छुटकारा) है।

वेदनाओं को अलग-अलग दृष्टिकोण से समझाया गया है। वेदनाएं दो भी बतलायी गयी हैं, तीन भी, छः भी, अठारह भी, छत्तीस भी, और एक सौ आठ भी । इस बात को ठीक से नहीं समझने से आपस में विवाद होता है, जैसा कि पञ्चकङ्ग स्थपति और आयुष्मान उदायी के बीच हुआ।

भगवान ने संस्कारों के निरोध की चर्चा करते हुए बतलाया कि प्रथम ध्यान पाये हुए की वाणी निरुद्ध हो जाती है, द्वितीय ध्यान पाये हुए के वितर्क और विचार, तृतीय ध्यान पाये हुए की प्रीति, चतुर्थ ध्यान पाये हुए के आश्वास-प्रश्वास, आकाशानंत्यायतन पाये हुए की रूप-संज्ञा, विज्ञानंत्यायतन पाये हुए की आकाशानंत्यायतन-संज्ञा, आकिंचन्यायतन पाये हुए की विज्ञानंत्यायतन-संज्ञा, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन पाये हुए की आकिंचन्यायतन-संज्ञा और संज्ञावेदयितनिरोध पाये हुए की संज्ञा और वेदना निरुद्ध हो जाती हैं। क्षीणास्रव भिक्षु के राग, द्वेष और मोह निरुद्ध हो जाते हैं।

### ३. अट्ठसतपरियाय-वग्ग

[सुत्त - सीवक, अट्ठसत, अञ्ञतरभिक्खु, पुब्ब, ञाण, सम्बहुलभिक्खु, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, ततियसमणब्राह्मण, सुद्धिक, निरामिस।]

भगवान ने मोळियसीवक परिव्राजक को समझाया कि सभी वेदनाएं पूर्व-कृत कर्मों के कारण ही नहीं होती हैं। इनके अनेक कारण होते हैं : पित्त, श्लेष्मा, वायु का प्रकोप, सन्निपात, ऋतुएं, उल्टा-सुल्टा खा लेना, कायक्लेश की साधना और कर्मों के विपाक ।

भगवान ने भिक्षुओं को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से वेदनाओं की संख्या का प्रज्ञापन किया -दो का भी, तीन का भी, पांच का भी, और ऐसे ही छः, अठारह, छत्तीस और एक सौ आठ का भी। इसे उन्होंने एक सौ आठ बातों का धर्मोपदेश कहा।

उन्होंने कई सुत्तों में वेदना, इसके समुदय और समुदय कराने वाले मार्ग, इसके निरोध और निरोध कराने वाले मार्ग, इसके आस्वाद, दोष और इससे निःसरण (छुटकारा पाने) के बारे में चर्चा की और कहा कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण इन बातों को यथार्थतः नहीं जानते, वे श्रमण अथवा ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी नहीं होते। ये लोग इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार नहीं करते हैं। जो लोग इन बातों को यथार्थतः जान लेते हैं, वे ही श्रमण अथवा ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी होते हैं, और वे ही इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं को निम्नांकित के बारे में विस्तार से समझाया –

* सामिष (सकाम) प्रीति, निरामिष (निष्काम) प्रीति, और निरामिष से निरामिषतर प्रीति,

* सामिष सुख, निरामिष सुख, और निरामिष से निरामिषतर सुख,

* सामिष उपेक्षा, निरामिष उपेक्षा, और निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा,

* सामिष विमोक्ष, निरामिष विमोक्ष, और निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष ।

## ३. मातुगामसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है जिनमें चौंतीस सुत्त हैं।

### १. पठमपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – मातुगाम, पुरिस, आवेणिक दुक्ख, तीहिधम्मेहि, कोधन, उपनाही, इस्सुकी, मच्छरी, अतिचारी, दुस्सील, अप्पस्सुत, कुसीत, मुट्ठस्सति, पञ्चवेर।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किन बातों के होने से स्त्री पुरुष को बिल्कुल लुभाने वाली नहीं होती, और किन बातों के होने से उसे अत्यंत लुभाने वाली होती है। ऐसे ही किन बातों के होने से पुरुष स्त्री को बिल्कुल लुभाने वाला नहीं होता, और किन बातों के होने से उसे अत्यंत लुभाने वाला होता है। उन्होंने यह भी बतलाया कि स्त्री को अपने पांच दुःख होते हैं जिन्हें वही अनुभव कर सकती है, पुरुष नहीं।

भगवान ने आयुष्मान अनुरुद्ध द्वारा जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर उन्हें उन धर्मों की जानकारी दी जिनके होने पर स्त्री मरणोपरांत दुर्गति को प्राप्त होती है।

### २. दुतियपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – अक्कोधन, अनुपनाही, अनिस्सुकी, अमच्छरी, अनतिचारी, सुसील, बहुस्सुत, आरद्धविरिय, उपट्ठितस्सति, पञ्चसील।]

इन सुत्तों में भगवान ने आयुष्मान अनुरुद्ध के अनुरोध पर उन्हें उन धर्मों की जानकारी दी जिनके होने पर स्त्री मरणोपरांत सुगति को प्राप्त होती है।

### ३. बल-वग्ग

[सुत्त – विसारद, पसय्ह, अभिभुय्य, एक, अङ्ग, नासेन्ति, हेतु, ठान, पञ्चसीलविसारद, वड्ढी।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि –

स्त्री के पांच बल होते हैं – रूप-बल, धन-बल, ज्ञाति-बल, पुत्र-बल और शील-बल।

इन पांच बलों से युक्त स्त्री अपने स्वामी को वश में रख अपने घर में प्रसन्नतापूर्वक रहती है।

यदि कोई स्त्री अन्य सभी बलों से युक्त हो, परंतु शील-बल से नहीं, तो लोग उसे कुल से हटा देते हैं, वापस नहीं बुलाते हैं।

शील-बल से युक्त स्त्री मरणोपरांत सुगति को प्राप्त होती है।

इन पांच बातों से आर्यश्राविका खूब प्रगति करती है – श्रद्धा, शील, विद्या, त्याग तथा प्रज्ञा।

## ४. जम्बुखादक संयुत्त

इस संयुत्त में सोलह सुत्त हैं जिनके नाम हैं : निब्बानपञ्हा, अरहत्तपञ्हा, धम्मवादीपञ्हा, किमत्थिय, अस्सासप्पत्त, परमस्सासप्पत्त, वेदनापञ्हा, आसवपञ्हा, अविज्जापञ्हा, तण्हापञ्हा, ओघपञ्हा, उपादानपञ्हा, भवपञ्हा, दुक्खपञ्हा, सक्कायपञ्हा, दुक्करपञ्हा।

इन सुत्तों में जम्बुखादक परिव्राजक ने आयुष्मान सारिपुत्त से अनेक प्रकार के प्रश्न कर इनका समाधान प्राप्त किया। ये प्रश्न हैं –

'निर्वाण' क्या है? 'अरहत्व' क्या है?

संसार में 'धर्मवादी', 'सुप्रतिपन्न', 'सुगत' कौन होते हैं?

श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किसलिए किया जाता है?

'आश्वासन पाया हुआ' कैसा होता है?

'परम आश्वासन पाया हुआ' कैसा होता है?

'वेदना' किसे कहते हैं?'आस्रव' क्या होते हैं?

'अविद्या' किसे कहते हैं?'तृष्णा' किसे कहते हैं?

'ओघ (बाढ़)' क्या है? 'उपादान' क्या है?

'भव' क्या है? 'दुःख' क्या है?

'सत्काय' क्या है? इस धर्मविनय में 'दुष्कर' क्या है?

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए आयुष्मान सारिपुत्त ने यह भी स्पष्ट किया कि निर्वाण, अरहत्व आदि के साक्षात्कार; वेदना, सत्काय आदि की पहचान; और अविद्या, तृष्णा आदि के प्रहाण के लिए जो मार्ग है वह यही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं, अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि यह मार्ग वास्तव में बड़ा सुंदर मार्ग है, और इस पर चलने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

## ५. सामण्डक संयुत्त

इस संयुत्त में भी 'जम्बुखादक संयुत्त' के समान ही सोलह सुत्त हैं। अंतर केवल इतना ही है कि इन सुत्तों में आयुष्मान सारिपुत्त से प्रश्न पूछने वाला है सामण्डक परिव्राजक, न कि जम्बुखादक परिव्राजक।

## ६. मोग्गल्लानसंयुत्त

इस संयुत्त में ग्यारह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – पठमझानपञ्हा, दुतियझानपञ्हा, ततियझानपञ्हा, चतुत्थझानपञ्हा, आकासानञ्चायतनपञ्हा, विञ्ञाणञ्चायतनपञ्हा, आकिञ्चञ्ञायतनपञ्हा, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनपञ्हा, अनिमित्तपञ्हा, सक्क, चन्दन।

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भिक्षुओं को बतलाया कि मैंने भगवान के निर्देशों के अनुरूप किस प्रकार समाधि का अभ्यास किया –

काम और अकुशल धर्मों से हट, वितर्क और विचार वाले, विवेक से उत्पन्न प्रीति, सुख वाले प्रथम ध्यान का।

वितर्क और विचार के शांत हो जाने पर, आध्यात्मिक संतुष्टि वाले, चित्त की एकाग्रता वाले, वितर्क और विचार से रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति, सुख वाले द्वितीय ध्यान का।

प्रीति से विरक्त हो, उपेक्षावान हो, स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी बन, शरीर से ऐसे सुख का अनुभव करते हुए जिसे आर्यजन कहते हैं – 'उपेक्षावान, स्मृतिमान, सुखपूर्वक विहार करने वाला', ऐसे तृतीय ध्यान का।

सुख और दुःख प्रहीण हो जाने पर, और सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के पहले से ही अस्त हो जाने से, उपेक्षा और स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान का।

रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्व-संज्ञा के मन में न लाने से 'आकाश अनंत है', ऐसे आकाशानंत्यायतन का।

आकाशानंत्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनंत है', ऐसे विज्ञानंत्यायतन का।

विज्ञानंत्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है', ऐसे आकिंचन्यायतन का।

आकिंचन्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का।

सभी निमित्तों को मन से हटाकर अनिमित्त चेतःसमाधि का।

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अंतर्धान हो त्रयस्त्रिंश देवों के बीच प्रकट हो देवेंद्र सक्क (शक्र) से कहा कि –

* बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करना अच्छा है। इससे कितने ही लोग मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त होते हैं।

* बुद्ध, धर्म और संघ के अभिप्राय को अच्छी तरह समझकर इनमें दृढ़ श्रद्धा का होना बहुत अच्छा है। इससे कितने ही लोग मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त होते हैं।

* आर्यों द्वारा प्रशंसित शीलों से युक्त होना अच्छा है। इससे कितने ही लोग मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त होते हैं।

* बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण कर मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त हुए लोग दूसरे देवों से दस बातों में बढ़-चढ़ कर होते हैं। ये बातें हैं –दिव्य आयु, दिव्य वर्ण, दिव्य सुख, दिव्य यश, दिव्य आधिपत्य, दिव्य रूप, दिव्य शब्द, दिव्य गंध, दिव्य रस और दिव्य स्प्रष्टव्य।

## ७. चित्तसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – संयोजन, पठमइसिदत्त, दुतियइसिदत्त, महकपाटिहारिय, पठमकामभू, दुतियकामभू, गोदत्त, निगण्ठनाटपुत्त, अचेलकस्सप, गिलानदस्सन।

गृहपति चित्त ने स्थविर भिक्षुओं को समझाया कि चक्षु रूपों का, श्रोत्र शब्दों का, घ्राण गंधों का, जिह्वा रसों का, काया स्प्रष्टव्यों का और मन धर्मों का संयोजन नहीं होता, बल्कि जहां इनके प्रत्यय से छंद-राग उत्पन्न होता है वही वहां बंधन होता है। जैसे एक ही रस्सी से बँधे काले और सफेद बैल एक दूसरे के बंधन नहीं होते, बल्कि वे जो एक रस्सी से बँधे होते हैं, वही वहां बंधन होता है।

आयुष्मान इसिदत्त ने बतलाया कि भगवान की देशनानुसार धातु-नानात्व से अभिप्राय होता है – चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु; श्रोत्रधातु, शब्दधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु; घ्राणधातु, गंधधातु, घ्राणविज्ञानधातु; जिह्वाधातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु; कायधातु, स्प्रष्टव्यधातु, कायविज्ञानधातु; मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि संसार में प्रचलित नाना प्रकार की मिथ्या दृष्टियां सत्कायदृष्टि के होने से होती हैं, और सत्कायदृष्टि के नहीं होने से नहीं होतीं। फिर यह भी स्पष्ट किया कि सत्कायदृष्टि होती कैसे है, और यह कैसे नहीं होती।

एक सुत्तविशेष में आयुष्मान महक द्वारा किये गये ऋद्धि-प्रदर्शन का उल्लेख है ।

गृहपति चित्त के प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान कामभू ने उसे बतलाया कि संस्कार तीन प्रकार के होते हैं – काय-संस्कार, वाणी-संस्कार तथा चित्त-संस्कार। काय-संस्कार हैं आश्वास-प्रश्वास, वाणी-संस्कार हैं वितर्क-विचार और चित्त-संस्कार हैं संज्ञा तथा वेदना। फिर इसका निदान भी प्रस्तुत किया। तदनंतर संज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर दिए। इन्हीं के अंतर्गत यह भी स्पष्ट किया कि मृत व्यक्ति और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था प्राप्त किये हुए व्यक्ति में क्या अंतर होता है।

गृहपति चित्त ने आयुष्मान गोदत्त को समझाया कि अप्रमाण चेतोविमुक्ति, आकिंचन्य चेतोविमुक्ति, शून्यता चेतोविमुक्ति और अनिमित्त चेतोविमुक्ति से

क्या अभिप्राय होता है, और यह भी स्पष्ट किया कि किस दृष्टिकोण से ये धर्म भिन्न-भिन्न अर्थ और भिन्न-भिन्न शब्द वाले होते हैं, और किस दृष्टिकोण से ये एक ही अर्थ को बताने वाले भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं।

गृहपति चित्त ने निगंठ नाटपुत्त को इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए चुनौती दी – एक प्रश्न, एक उद्देश्य, एक उत्तर; दो प्रश्न, दो उद्देश्य, दो उत्तर; तीन प्रश्न, तीन उद्देश्य, तीन उत्तर; चार प्रश्न, चार उद्देश्य, चार उत्तर; पांच प्रश्न, पांच उद्देश्य, पांच उत्तर; छः प्रश्न, छः उद्देश्य, छः उत्तर; सात प्रश्न, सात उद्देश्य, सात उत्तर; आठ प्रश्न, आठ उद्देश्य, आठ उत्तर; नौ प्रश्न, नौ उद्देश्य, नौ उत्तर; दस प्रश्न, दस उद्देश्य, दस उत्तर।

गृहपति चित्त की अचेल कस्सप से भेंट होने पर अचेल कस्सप ने कहा कि मुझे प्रव्रजित हुए तीस वर्ष हो गये हैं परंतु मुझे किसी अलौकिक श्रेष्ठज्ञान की अनुभूति नहीं हुई है। गृहपति चित्त ने कहा कि मुझे भी उपासक हुए तीस वर्ष हो गये हैं, पर मैं जब चाहता हूं तब प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। और यदि मैं भगवान के जीवनकाल में शरीर छोड़ दूं, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि वह मेरे बारे में ऐसा कहें कि ऐसा कोई संयोजन नहीं है जिससे गृहपति चित्त को फिर इस संसार में आना पड़े।

यह सुनकर अचेल कस्सप को धर्म की सु-आख्यातता पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि कैसे कोई गृहस्थ भी इस प्रकार अलौकिक श्रेष्ठज्ञान को अनुभूति पर उतार लेता है। तत्पश्चात उसने स्थविर भिक्षुओं से प्रव्रज्या और उपसंपदा पा एकांत में, अकेले, अप्रमत्त रह विहार करते हुए मुक्त अवस्था का साक्षात्कार कर यह जान लिया – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

गृहपति चित्त की रुग्णावस्था में कुछ देवताओं ने उसके पास आकर कहा – "गृहपति! जीवित रहें, आगे चल कर आप चक्रवर्ती राजा होंगे।" इस पर गृहपति ने उनसे कहा –"यह भी अनित्य है, अध्रुव है, त्याज्य है।" अंततः गृहपति अपने मित्रों और बंधु-बांधवों को बुद्ध, धर्म और संघ में श्रद्धालु होने तथा दानशील होने की प्रेरणा देकर शरीर छोड़ गया।

## ८. गामणिसंयुत्त

इस संयुत्त में तेरह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – चण्ड, तालपुट, योधाजीव, हत्थारोह, अस्सारोह, असिबन्धकपुत्त, खेत्तूपम, सङ्घधम, कुल, मणिचूळक, भद्रक, रासिय, पाटलिय।

चण्ड ग्रामणी की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उसे बतलाया कि जिनके राग, द्वेष, मोह प्रहीण नहीं होते, और इनके प्रहीण नहीं होने से वे दूसरों पर कोपकरने लगते हैं, वे 'चंड' कहलाते हैं। जिनके राग, द्वेष, मोह प्रहीण हो जाते हैं, और इनके प्रहीण हो जाने से वे दूसरों पर कोप नहीं करते, वे 'सुरत' (विनम्र) कहलाते हैं।

भगवान ने तालपुट नटग्रामणी को बतलाया कि यह मिथ्यादृष्टि है कि दूसरों को सच या झूठ बोलकर हंसाने, बहलाने वाले नट मरणोपरांत प्रहास देवों के बीच उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः मिथ्या दृष्टि वालों की दो ही गतियां हो सकती हैं – नरक या पशुयोनि।

भगवान ने योधाजीव ग्रामणी, हत्थारोह ग्रामणी तथा अस्सारोह ग्रामणी को भी स्पष्ट किया कि यह भी मिथ्यादृष्टि है कि युद्ध लड़ने वाले योद्धा, हाथीसवार तथा घुड़सवार मरणोपरांत किन्हीं देवों के बीच उत्पन्न होते हैं। उनकी भी दो ही गतियां हो सकती हैं – नरक या पशुयोनि।

असिबंधकपुत्र ग्रामणी ने भगवान से कहा कि कई ब्राह्मण मरे हुए को बुलाते हैं, चलाते हैं, स्वर्ग में भेज देते हैं। भगवान अर्हत, सम्यक संबुद्ध हैं। वे भी ऐसा करसकते हैं कि सारा लोक मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हो!

भगवान ने उसे समझाया कि जैसे गहरे जलाशय में छोड़ा हुआ बड़ा पत्थर इसके पेंदे से जा लगता है और इसमें छोड़ा हुआ घी या तेल पानी पर उतराने लगता है, और लोगों की प्रार्थना पर न तो वह पत्थर उतराने लगता है और न वह घी या तेल पेंदे से जा लगता है, वैसे ही शील भंग करनेवाला और मिथ्यादृष्टिक किसी के चाहने मात्र से स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त नहीं हो सकता है, और न ही शील पालन करने वाला और सम्यक दृष्टिक नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार हर किसी की सुगति-दुर्गति अपने अपने कर्मों पर निर्भर करती है।

असिबंधक पुत्र ग्रामणी ने भगवान से यह जानना चाहा कि वह किसी को बड़े प्रेम से धर्मोपदेश करते हैं, और किसी को उतने प्रेम से नहीं –इसका क्या कारण है?

भगवान ने उसी से पूछ लिया कि यदि किसी कृषक के तीन खेत हों –उत्तम, मध्यम और बंजर –तो वह पहले-पहल किस खेत में बीज बोना चाहेगा? उसने कहा कि वह सर्वप्रथम पहले खेत में बीज बोयेगा, फिर मध्यम खेत में और अंततः बंजर खेत में (जिससे कि इसमें से कम से कम गाय-बैल की सानी तो निकल ही आये)।

इस पर भगवान ने कहा कि धर्मोपदेश के प्रयोजन से कृषक के पहले खेत के समान हैं मेरे भिक्षु-भिक्षुणियां। मध्यम खेत के समान हैं मेरे उपासक-उपासिकाएं। ये सभी मेरी ही शरण में अपना त्राण समझ कर विहार करते हैं। बंजर खेत के समान हैं अन्य मतावलंबी श्रमण, ब्राह्मण तथा परिव्राजक। इन्हें भी पहले वालों के समान ही धर्मोपदेश करता हूं जो होता है आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी। इन्हें धर्मोपदेश देने का कारण यह होता है कि यदि वे कहीं एक बात भी समझ पाएं तो यह दीर्घकाल तक उनके हित और सुख के लिए हो।

भगवान ने निगंठ नाटपुत्त की इस शिक्षा को उचित नहीं बतलाया कि "जो-जो बहुलता से करता है, वैसी ही उसकी गति होती है।" उन्होंने कहा कि शील भंग करने वाले का अधिक समय शील भंग करने की अपेक्षा शील भंग न करने में बीतता है। उदाहरणतया, जीवहिंसा करने के समय की अपेक्षा जीवहिंसा न करने का समय अधिक होता है। यही तर्क चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ बोलने, आदि के समय पर भी लागू होता है। ऐसा होने से कोई भी व्यक्ति नरक में नहीं जा सकता, जिससे यह शिक्षा –"जो-जो बहुलता से करता है, वैसी ही उसकी गति होती है" – दोषपूर्ण हो जाती है।

भगवान ने असिबंधक पुत्र ग्रामणी को कुलों के विनाश के आठ हेतु बतलाये – (१) राजा, (२) चोर, (३) अग्नि, (४) जल, (५) छिपे कोष की अप्राप्ति, (६) अकर्मण्यता, (७) कुलांगार की उत्पत्ति (जो सारी संपत्ति फूंक दे), और (८) अनित्यता।

भगवान ने मणिचूळक ग्रामणी को स्पष्ट किया कि मैं किसी भी सूरत में शाक्यपुत्रीय श्रमणों द्वारा सोना-चांदी स्वीकार किये जाने का उपदेश नहीं देता। श्रमण शाक्यपुत्र तो यह सब कुछ त्याग चुके हैं।

भद्रक नाम के ग्रामणी की अभ्यर्थना पर भगवान ने उसे दुःख के समुदय और अवसान का उपदेश दिया। उन्होंने उदाहरण दे-देकर उसे समझाया कि तीनों कालों में दुःखों की उत्पत्ति का एक ही कारण रहता है, और वह है 'छंद' (इच्छा, तृष्णा) ।

भगवान ने रासिय ग्रामणी की इस भ्रांति को दूर किया कि वह सभी तपश्चर्याओं की निंदा करते हैं, और सभी तपश्चर्याओं में भी रूक्षाजीव की सबसे अधिक ।उन्होंने कहा कि प्रव्रजित दो अंतों का आचरण न करे, अर्थात न तो कामसुखों में डूब जाए और न ही देह को दंडित करने में जुट जाए। ये दोनों ही अनर्थ करने वाले हैं। इन दोनों अंतों को छोड़ कर बुद्ध को मध्यम मार्ग का परम ज्ञान प्राप्त हुआ जो निर्वाण के लिए है। और यह मध्यम मार्ग वही है जिसे कहते हैं 'आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान ने पाटलिय ग्रामणी को स्पष्ट किया कि मैं 'माया' को जानता हूं, पर 'मायावी' नहीं हूं। मायावी मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होता है। मिथ्या दृष्टि वाले की भी यही दशा होती है।

भगवान ने 'धर्मसमाधि' के बारे में भी विस्तार से बतलाया और कहा कि भिन्न-भिन्न मतों की बात सुनने से मन में जो शंका जागती है उसका निवारण 'धर्मसमाधि' से होता है।

## ९. असङ्खतसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है जिनमें चौवालीस सुत्त हैं।

### (१) पठम-वग्ग

[सुत्त – कायगतासति, समथविपस्सना, सवितक्क सविचार, सुञ्ञतसमाधि, सतिपट्ठान, सम्मप्पधान, इद्धिपाद, इंद्रिय, बल, बोज्झङ्ग, मग्गङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को 'असंस्कृत' (अकृत, अर्थात निर्वाण) और 'असंस्कृतगामी मार्ग' का उपदेश किया। उन्होंने बतलाया कि 'असंस्कृत' होता है राग का क्षय, द्वेष का क्षय तथा मोह का क्षय; और 'असंस्कृतगामी मार्ग' होता है कायगता स्मृति, शमथ और विपश्यना, चार स्मृतिप्रस्थान, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग इत्यादि।

### (२) दुतिय-वग्ग

[सुत्त – असङ्खत, अनत, अनासवादि, परायन।]

भगवान ने भिक्षुओं को पुनः 'असंस्कृत' और 'असंस्कृतगामी मार्ग' की विस्तारपूर्वक व्याख्या करने के पश्चात दूसरे-दूसरे नामों से भी इसी प्रसंग को समझाया। जैसे 'असंस्कृत' को 'अनत', 'अनास्रव', 'सत्य', 'पार', 'अजर्जर', 'ध्रुव', 'निर्वाण', 'मुक्ति' आदि नामों से प्रज्ञप्त किया और 'असंस्कृतगामी मार्ग' को 'अनतगामी मार्ग', 'अनास्रवगामी मार्ग', 'सत्यगामी मार्ग', 'पारगामी मार्ग', 'अजर्जरगामी मार्ग', 'ध्रुवगामी मार्ग', 'निर्वाणगामी मार्ग', 'मुक्तिगामी मार्ग' से, क्रमशः, प्रख्यापित किया और सारी बात ज्यों-की-त्यों समझायी।

## १०. अब्याकतसंयुत्त

इस संयुत्त में ग्यारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – खेमा, अनुराध, पठमसारिपुत्तकोट्ठिक, दुतियसारिपुत्तकोट्ठिक, ततियसारिपुत्तकोट्ठिक, चतुत्थसारिपुत्तकोट्ठिक, मोग्गल्लान, वच्छगोत्त, कुतूहलसाला, आनन्द, सभियकच्चान।

इनमें से अधिकांश सुत्तों में उन धर्मों की चर्चा हुई है जिन्हें भगवान तथागत ने 'अव्याकृत' कहा है, अर्थात जिनका उत्तर 'हां' या 'न' में नहीं दिया जा सकता है। ये धर्म हैं –

* क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं?

* क्या तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं?

* क्या तथागत मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी?

* क्या तथागत मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं?

* क्या लोक शाश्वत है?

* क्या लोक अशाश्वत है?

* क्या लोक अंतवान है?

* क्या लोक अनन्त है?

* क्या जीव और शरीर एक ही हैं?

* क्या जीव अन्य है और शरीर अन्य?

साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि दूसरे लोग इन धर्मों को अव्याकृत क्यों नहीं मानते हैं, और तथागत ऐसा क्यों मानते हैं।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित के बारे में भगवान की अभिव्यक्ति है –

* मैं सदा दुःख और दुःख के निरोध का ही उपदेश करता हूं।

* मैं उसी की उत्पत्ति के बारे में बतलाता हूं जिसका उपादान अभी छूटा न हो, उपादान से मुक्त हुए के बारे में नहीं।

* इस शरीर को छोड़ दूसरा शरीर पाने के बीच सत्त्व का उपादान होता है – 'तृष्णा'।

# संयुत्तनिकाय-३

## महावग्ग

### १. मग्गसंयुत्त

यह संयुत्त आठ वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ इक्यासी सुत्त हैं।

#### (१) अविज्जा-वग्ग

[सुत्त – अविज्जा, उपट्ठ, सारिपुत्त, जाणुस्सोणिब्राह्मण, किमत्थिय, पठमअञ्ञतरभिक्खु, दुतियअञ्ञतरभिक्खु, विभङ्ग, सूक, नन्दिय।]

इन सुत्तों में भगवान ने बतलाया है कि –

* अविद्या के प्रथमतर होने से अकुशल धर्मों की उत्पत्ति होती है, और विद्या के प्रथमतर होने से कुशल धर्मों की।

* कल्याणमित्र का मिल जाना ब्रह्मचर्य का नितांत सफल हो जाना ही होता है, क्योंकि विश्वास होता है कि कल्याणमित्र से समागम किया हुआ भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को सुभावित करेगा ही।

* आर्य अष्टांगिक मार्ग को 'ब्रह्मयान' भी कहते हैं, 'धर्मयान' भी और 'अनुत्तर संग्रामविजय' भी।

* अन्य लोगों द्वारा पूछे जाने पर उन्हें स्पष्ट करना चाहिए कि श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन दुःख की पहचान के लिए किया जाता है, और इसके लिए मार्ग वही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं।

* 'ब्रह्मचर्य' से अभिप्राय आर्य अष्टांगिक मार्ग से ही लेना होता है। इसका अंतिम उद्देश्य होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय।

* 'अमृत' से अभिप्राय होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय। और अमृतगामी मार्ग है – यही आर्य अष्टांगिक मार्ग।

* 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' है – सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि। (भगवान ने प्रत्येक का आशय भी समझाया।)

* सम्यक दृष्टि से युक्त हो, मार्ग को सम्यक प्रकार से भावित कर भिक्षु अविद्या को काट, विद्या को उत्पन्न कर, निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है।

* आठ धर्मों की भावना और बहुलीकरण से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। ये आठ धर्म हैं – सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक समाधि पर्यंत।

## (२) विहार-वग्ग

[सुत्त – पठमविहार, दुतियविहार, सेक्ख, पठमउप्पाद, दुतियउप्पाद, पठमपरिसुद्ध, दुतियपरिसुद्ध, पठमकुक्कुटाराम, दुतियकुक्कुटाराम, ततियकुक्कुटाराम।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किन-किनके प्रत्यय से वेदना होती है, कोई शैक्ष्य कैसे होता है, तथागत की उत्पत्ति के बिना सम्यक दृष्टि से सम्यक समाधि पर्यंत आठ धर्मों की भावना वा बहुलीकरण नहीं होता है, ऐसे ही बुद्ध के विनय के अभाव में इन आठ धर्मों की भावना वा बहुलीकरण नहीं होता है, इत्यादि ।

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान भद्द को बतलाया कि अष्टांगिक मिथ्या-मार्ग 'अब्रह्मचर्य' कहलाता है, अर्थात मिथ्या दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या वचन, मिथ्या कर्मांत, मिथ्या आजीविका, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति तथा मिथ्या समाधि। इन्हीं आठों का सम्यक स्वरूप 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है, जिसका अंतिम उद्देश्य होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय। आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलने वाला कहलाता है –'ब्रह्मचारी'।

## (३) मिच्छत्त-वग्ग

[सुत्त – मिच्छत्त, अकुसलधम्म, पठमपटिपदा, दुतियपटिपदा, पठमअसप्पुरिस, दुतियअसप्पुरिस, कुम्भ, समाधि, वेदना, उत्तिय।]

भगवान ने मिथ्या दृष्टि से लेकर मिथ्या समाधि पर्यंत आठ धर्मों को जिन नामों से अभिहित किया है वे हैं – 'मिथ्या स्वभाव', 'मिथ्या मार्ग', 'अकुशल धर्म' । ऐसे ही सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक समाधि पर्यंत आठ धर्मों को जिन

नामों से अभिहित किया है वे हैं – 'सम्यक स्वभाव', 'सम्यक मार्ग', 'कुशल धर्म'। उन्होंने कहा कि चाहे कोई गृहस्थ हो अथवा प्रव्रजित, वह सम्यक मार्ग पर आरूढ़ होकर न्यायिक और कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है।

भगवान ने 'असत्पुरुष' तथा 'सत्पुरुष' और 'असत्पुरुष' तथा 'महाअसत्पुरुष' का पारस्परिक भेद भी बतलाया।

उन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग को चित्त में स्थिरता लाने वाला आधार बतलाया। सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक स्मृति तक सात धर्मों पर आधारित चित्त की एकाग्रता को बतलाया –'आर्य सम्यक समाधि'।

उन्होंने कहा वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद। इन तीनों की परिज्ञा के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिए। पांच कामगुणों के प्रहाण के लिए भी इसी मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

## (४) पटिपत्ति-वग्ग

[सुत्त – पठमपटिपत्ति, दुतियपटिपत्ति, विरद्ध, पारङ्गम, पठमसामञ्ञ, दुतियसामञ्ञ, पठमब्रह्मञ्ञ, दुतियब्रह्मञ्ञ, पठमब्रह्मचरिय, दुतियब्रह्मचरिय।]

इन सुत्तों में भगवान ने आर्य अष्टांगिक मार्ग का भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचन किया है –यही 'सम्यक प्रतिपत्ति' है और इस मार्ग पर आरूढ़ व्यक्ति कहलाता है 'सम्यक प्रतिपन्न'; जिनका यह मार्ग आरंभ होता है उनका सम्यक दुःखक्षयगामी आर्य मार्ग आरंभ हो जाता है, और जिनका अवरुद्ध हो जाता है उनका सम्यक दुःखक्षयगामी आर्य मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है; इसकी भावना करने और इसको बढ़ाने से कोई भी व्यक्ति अपार को पार कर जाता है; इसी मार्ग को कहते हैं 'श्रामण्य' अथवा 'ब्राह्मण्य' अथवा 'ब्रह्मचर्य'; इन्हीं के फल होते हैं स्रोतापत्ति, सकृदागामिता, अनागामिता तथा अरहत्व, और इनका अर्थ होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय।

- **अञ्ञतित्थियपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – रागविराग, संयोजनप्पहानादि-सुत्तछक्क, अनुपादापरिनिब्बान।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि यदि अन्यतैर्थिक परिव्राजक आप लोगों से

पूछें कि श्रमण गौतम के शासन में किसलिए ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, तो उनको कहना चाहिए –राग जीतने के लिए, बंधन दूर करने के लिए, अनुशय के समूल नाश के लिए, मार्ग का अंत जानने के लिए, आस्रवों के क्षय के लिए, विद्या के विमुक्तिफल का साक्षात्कार करने के लिए, ज्ञान-दर्शन के लिए अथवा उपादान से रहित हो निर्वाण पाने के लिए।

इन सब का उपाय यही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं।

- **सुरियपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा, कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जैसे आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण होता है, वैसे ही कल्याणमित्र का मिलना आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ का पूर्व-लक्षण जानना चाहिए। ऐसे ही अन्य पूर्व-लक्षण हैं – शील-संपदा, छंद-संपदा, आत्म-संपदा, (सम्यक) दृष्टि-संपदा, अप्रमाद-संपदा तथा भली प्रकार चिंतन-मनन करने रूपी संपदा। कल्याणमित्र के संपर्क में आया हुआ व्यक्ति विवेक, विराग तथा निरोध का आश्रय लेकर आर्य अष्टांगिक मार्ग के विभिन्न अंगों को भावित करता और बढ़ाता ही है। इससे उसके राग, द्वेष और मोह सर्वथा दूर हो जाते हैं।

- **एक धम्मपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा, कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ के लिए एक धर्म बहुत उपकार करने वाला है, और वह है 'कल्याणमित्रता'। ऐसे ही अन्य धर्म हैं – शील-संपदा, छंद-संपदा, आत्म-संपदा, (सम्यक) दृष्टि-संपदा, अप्रमाद-संपदा तथा भली प्रकार चिंतन-मनन करने रूपी संपदा। इन संपदाओं से युक्त हुआ व्यक्ति आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करेगा और बढ़ायेगा ही – ऐसी आशा रखनी चाहिए। इससे राग, द्वेष और मोह सर्वथा दूर हो जाते हैं।

- **दुतियएक धम्मपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा, कल्याणमित्त,सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि मैं किसी दूसरे ऐसे एक धर्म को भी नहीं देखता हूं जिससे न पाये गये आर्य अष्टांगिक मार्ग का लाभ हो जाय, या लाभ कर लिया गया मार्ग पूर्ण रूप से भावित हो जाय, जैसे कि यह 'कल्याणमित्रता'। शेष पूर्वानुसार।

- **गङ्गापेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – पठमपाचीननिन्न, दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तचतुक्क,
छट्ठपाचीननिन्न, पठमसमुद्दनिन्न, दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जैसे गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही जैसी नदियां पूर्व की ओर बहती हैं अथवा समुद्र की ओर बहती हैं, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करता और बढ़ाता हुआ भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वह भिक्षु विवेक, विराग और निरोध का आश्रय लेकर इस मार्ग के विभिन्न अंगों को भावित करता और बढ़ाता है।

- **दुतियगङ्गापेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – पठमपाचीननिन्न, दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमसमुद्दनिन्न,
दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमपाचीननिन्न, दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तपञ्चक,
पठमसमुद्दनिन्न, दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमपाचीननिन्न,
दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमसमुद्दनिन्न, दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक।]

पूर्ववत। भगवान ने बतलाया कि कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करते और बढ़ाते हुए कैसे निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। यह होता है सम्यक दृष्टि, आदि इस मार्ग के विभिन्न अंगों को भावित करने और बढ़ाने से।

## (५) अप्पमाद-वग्ग

[सुत्त – तथागत, पद, कूटादि-सुत्तपञ्चक, चन्दिमादि-सुत्ततिक।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि सभी प्राणियों में 'तथागत' अग्र (श्रेष्ठ) जाने जाते हैं, ऐसे ही सभी कुशल धर्मों में 'अप्रमाद' अग्र जाना जाता है। ऐसी आशा की जाती है कि अप्रमत्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करेगा और इसे बढ़ायेगा ही।

भगवान ने अनेकानेक अन्य उपमाओं के द्वारा भी 'अप्रमाद' की अग्रता (श्रेष्ठता) को प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि यह ऐसे ही है जैसे हाथी के पैर में सभी प्राणियों के पैर समा जाने से वह सभी पैरों में अग्र समझा जाता है; कूटागार के सभी धरण कूट की ओर झुके होने के कारण कूट उनमें अग्र समझा जाता है; छोटे-मोटे राजा चक्रवर्ती राजा के अधीन होने के कारण चक्रवर्ती राजा उनमें अग्र समझा जाता है; तारागण की प्रभा चंद्रमा की प्रभा की सोलहवीं कला के बराबर भी न होने से चंद्रमा उनमें अग्र समझा जाता है; सभी बुने गये कपड़ों में काशी का बना कपड़ा अग्र समझा जाता है; इत्यादि। ऐसे ही कुशल धर्मों में अग्र है 'अप्रमाद'।

## (६) बलकरणीय-वग्ग

[सुत्त – बल, बीज, नाग, रुक्ख, कुम्भ, सूक, आकास, पठममेघ, दुतियमेघ, नावा, आगन्तुक, नदी।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जितने भी कर्मबल से किये जाते हैं वे सभी पृथ्वी को आधार बना कर, पृथ्वी पर खड़े होकर किये जाते हैं, ऐसे ही शील को आधार बना कर, शील में प्रतिष्ठित होकर आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित किया जाता और बढ़ाया जाता है। ऐसा करने वाला व्यक्ति विवेक, विराग, निरोध का आश्रय लेकर निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। जैसे घड़े को उलट देने से वह सारा पानी बहा देता है, कुछ रोक नहीं रखता, वैसे ही ऐसा व्यक्ति सभी पापपूर्ण अकुशल धर्मों को छोड़ देता है, कुछ बचा नहीं रखता। ऐसे व्यक्ति में पूर्णता को प्राप्त होते हैं – चारों स्मृति-प्रस्थान, चारों सम्यक प्रधान, चारों ऋद्धियां, पांचों इंद्रियां, पांचों बल और सातों बोध्यंग।

भगवान ने यह भी कहा कि ऐसा व्यक्ति ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्मों को ज्ञानपूर्वक जानता है, ज्ञानपूर्वक त्यागने योग्य धर्मों को ज्ञानपूर्वक त्यागता है, ज्ञानपूर्वक साक्षात्कार करने योग्य धर्मों का ज्ञानपूर्वक साक्षात्कार करता है और ज्ञानपूर्वक भावित किये जाने योग्य धर्मों को भावित करता है।

तदनंतर यह भी कहा कि ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्म हैं – पांच

उपादानस्कंध; ज्ञानपूर्वक त्यागने योग्य धर्म हैं – अविद्या और भवतृष्णा; ज्ञानपूर्वक साक्षात्कार करने योग्य धर्म हैं –विद्या और विमुक्ति; और ज्ञानपूर्वक भावित करने योग्य धर्म हैं – शमथ और विपश्यना।

उन्होंने यह भी कहा कि यह संभव नहीं है कि इस प्रकार का कोई भिक्षु किसी भी प्रलोभन में पड़कर इस शिक्षा को छोड़ गृहस्थ बन जाय।

## (७) एसना-वग्ग

[सुत्त – एसना, विधा, आसव, भव, दुक्खता, खिल, मल, नीघ, वेदना, तण्हा, तसिना।]

भगवान ने तीन एषणाओं (काम-एषणा, भव-एषणा, ब्रह्मचर्य-एषणा।), तीन अहंकारों ('मैं बड़ा हूं', 'मैं बराबर हूं', 'मैं छोटा हूं'), तीन आस्रवों (कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव), तीन भवों (कामभव, रूपभव, अरूपभव), तीन दुःखताओं (दुःख-दुःखता, संस्कार-दुःखता, विपरिणाम-दुःखता), तीन मलों (राग, द्वेष, मोह), तीन वेदनाओं (सुखद, दुःखद, अदुःखद-असुखद), इत्यादि की चर्चा करते हुए भिक्षुओं को बतलाया कि इन्हें जानने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करना चाहिए। फिर यह भी बतलाया कि यह मार्ग क्या होता है।

## (८) ओघ-वग्ग

[सुत्त – ओघ, योग, उपादान, गन्थ, अनुसय, कामगुण, नीवरण, उपादानक्खन्ध, ओरम्भागिय, उद्धम्भागिय।]

भगवान ने चार बाढ़ों (काम-बाढ़, भव-बाढ़, मिथ्यादृष्टि-बाढ़, अविद्या-बाढ़), चार योगों (काम-योग, भव-योग, मिथ्यादृष्टि-योग, अविद्या-योग), चार उपादानों (काम-उपादान, मिथ्यादृष्टि-उपादान, शीलव्रत-उपादान, आत्मवाद-उपादान), सात अनुशयों (कामराग, हिंसाभाव, मिथ्यादृष्टि, विचिकित्सा, मान, भवराग, अविद्या), पांच नीवरणों (कामच्छंद, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा), इत्यादि की चर्चा करते हुए भिक्षुओं को बतलाया कि इन्हें जानने, इनकी परिज्ञा, क्षय और प्रहाण के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करना चाहिए। फिर यह भी बतलाया कि यह मार्ग क्या होता है।

## २. बोज्झङ्गसंयुत्त

यह संयुत्त अठारह वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ उन्यासी सुत्त हैं।

### (१) पब्बत-वग्ग

[सुत्त – हिमवन्त, काय, सील, वत्थ, भिक्खु, कुण्डलिय, कूटागार, उपवान, पठमउप्पन्न, दुतियउप्पन्न।]

भगवान ने कहा कि भिक्षु शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, सात बोध्यंगों को भावित करते हुए, इन्हें बढ़ाते हुए धर्मों में महानता, विपुलता प्राप्त कर लेता है। यह इसलिए होता है क्योंकि वह विवेक, विराग, निरोध का आश्रय लेकर संबोधि के अंगों (स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि तथा उपेक्षा) का अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति होती है।

उन्होंने यह भी कहा कि जैसे शरीर आहार मिलने पर ही खड़ा रहता है, आहार नहीं मिलने पर खड़ा नहीं रह सकता, वैसे ही सात बोध्यंग भी आहार मिलने पर ही खड़े होते हैं, आहार नहीं मिलने पर खड़े नहीं रह पाते। फिर यह भी बतलाया कि वे कौनसे आहार हैं जिनसे संबोधि का प्रत्येक अंग भावित और पूर्ण होता है। उन्होंने पांच नीवरणों के बारे में भी बतलाया कि वे कौनसे आहार पाकर उत्पन्न होते और वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि जो भिक्षु शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति और विमुक्ति-ज्ञानदर्शन से संपन्न होते हैं, उनका दर्शन भी उपकारक होता है, उनके उपदेशों को सुनना भी, उनके पास जाना भी, उनका सत्संग करना भी, उनसे शिक्षा लेना भी, उनसे प्रव्रजित हो जाना भी।

उन्होंने बतलाया कि संबोधि का प्रत्येक अंग कैसे, एक-के-बाद-एक भावित वा पूर्ण होता जाता है, और सातों अंगों के भावित और परिपूर्ण हो जाने पर कौन से सात अच्छे परिणामों की आशा रखनी चाहिए। ये अच्छे परिणाम हैं – अपने देखते-देखते निर्वाण-लाभ, अथवा मृत्यु के समय निर्वाण-लाभ, अथवा पांच नीचे वाले संयोजनों के क्षीण हो जाने से अपने भीतर निर्वाण की अनुभूति, अथवा इन संयोजनों के क्षीण हो जाने से आगे चल कर निर्वाण की अनुभूति, अथवा असंस्कार-परिनिर्वाण की प्राप्ति, अथवा ससंस्कार परिनिर्वाण की प्राप्ति, अथवा ऊर्ध्वस्रोत हो श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला हो जाना।

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को सात बोध्यंगों की जानकारी देते हुए बतलाया कि मैं जिस-जिस काल में जिस-जिस बोध्यंग से विहार करना चाहता हूं उस-उस काल में उसी-उसी बोध्यंग से विहरता हूं और उस समय वह प्रमाणरहित और पूरा-पूरा होता है। उसके उपस्थित रहते मुझे विदित रहता है कि 'यह उपस्थित है', और उसके च्युत होने पर विदित होता है कि 'यह च्युत हो रहा है'।

किसी भिक्षु की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उसे समझाया कि 'बोध' (ज्ञान) के लिए होने से 'बोध्यंग' इस नाम से पुकारे जाते हैं। विवेक, विराग, निरोध का आश्रय लेते हुए इन अंगों को भावित करने से काम, भव तथा अविद्या रूपी आस्रव चित्त को छोड़ देते हैं, और इनसे विमुक्त हुए को यह ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

एक समय कुण्डलिय परिव्राजक ने भगवान से कहा कि बहुत से श्रमण-ब्राह्मण इस बारे में वाद-विवाद करते रहते हैं कि क्या श्रमण गौतम क्षीणास्रव होकर विहार करते हैं? इस पर भगवान ने उसे स्पष्ट किया कि विद्या और विमुक्ति के फल से युक्त हो बुद्ध विहार करते हैं। तत्पश्चात परिव्राजक के अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने उसे सात बोध्यंगों, चार स्मृति-प्रस्थानों, सुचरितों, इंद्रिय-संवर आदि के बारे में बतलाया। इससे वह इतना आश्चर्यचकित एवं भावविभोर हुआ कि वह भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

किन्हीं सुत्तों में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जैसे कूटागार के सभी धरण कूट की ओर ही झुके होते हैं, वैसे ही सात बोध्यंगों को भावित करने, बढ़ाने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुका हुआ होता है; सात बोध्यंग सिद्ध हो जाने पर यह लक्षित होने लगता है कि इनसे सुखविहार संभव हो गया है; सम्यक संबुद्ध की उत्पत्ति के बिना सात अनुत्पन्न बोध्यंग नहीं होते, जिसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि बुद्ध के विनय के अभाव में ये नहीं होते।

## (२) गिलान-वग्ग

[सुत्त – पाण, पठमसूरियूपम, दुतियसूरियूपम, पठमगिलान, दुतियगिलान, ततियगिलान, पारङ्गम, विरद्ध, अरिय, निब्बिदा।]

इन सुत्तों में मुख्यतया इन विषयों की चर्चा है –

* शील के आधार पर प्रतिष्ठित होकर ही सात बोध्यंगों का अभ्यास किया जाता है।

* कल्याणमित्र से समागम होना अथवा सही प्रकार का चिंतन-मनन आरंभ होना इन बोध्यंगों की उत्पत्ति का पूर्वलक्षण होता है।

* भगवान ने इन बोध्यंगों को भावित करने और इन्हें बढ़ाने के बारे में सम्यक रूप से बतलाया है, इससे निर्वाण की प्राप्ति होती है।

* बोध्यंगों को भावित करने तथा बढ़ाने का काम आरंभ करने के साथ ही सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग आरंभ हो जाता है और यह काम रुकते ही यह मार्ग भी रुक जाता है।

## (३) उदायि-वग्ग

[सुत्त – बोधाय, बोज्झङ्गदेसना, ठानिय, अयोनिसोमनसिकार, अपरिहानिय, तण्हक्खय, तण्हानिरोध, निब्बेधभागिय, एकधम्म, उदायि।]

इन सुत्तों में मुख्य रूप से यह बतलाया गया है कि –

* 'बोध' (ज्ञान) कराने के कारण बोध्यंग' इस नाम से पुकारे जाते हैं।

* नीवरणों (कामराग, हिंसाभाव, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा) को स्थान देने वाले धर्मों का मनन करने से अनुत्पन्न नीवरण उत्पन्न हो जाते हैं, और उत्पन्न हुए और बढ़ जाते हैं। बोध्यंगों को स्थान देने वाले धर्मों का मनन करने से वे भी अनुत्पन्न होने पर उत्पन्न हो जाते हैं, और उत्पन्न हुए और बढ़ जाते हैं।

* सात क्षय न होने वाले धर्म हैं – यही सात बोध्यंग।

* तृष्णा के क्षय (अथवा निरोध, अथवा निर्वेधन) का मार्ग है – यही सात बोध्यंग।

* सात बोध्यंगों को छोड़ एक भी ऐसा धर्म नहीं है जिसको भावित करने और बढ़ाने से संयोजनीय (बंधनकारक) धर्मों का प्रहाण संभव होता हो।

अंतिम सुत्त में भगवान ने आयुष्मान उदायी को आश्वस्त किया है कि उसने सात बोध्यंगों को भावित करने और बढ़ाने का जो मार्ग पा लिया है उसमें विहार

करते हुए उसे परमार्थ मिल जायगा, और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेगा – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं ।'

## (४) नीवरण-वग्ग

[सुत्त – पठमकुसल, दुतियकुसल, उपक्किलेस, अनुपक्किलेस, अयोनिसोमनसिकार, योनिसोमनसिकार, वुद्धि, आवरणनीवरण, रुक्ख, नीवरण।]

ऐसे पांच नीवरण हैं जो अंधा बना देते हैं, ज्ञान हर लेते हैं, प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होने देते, परेशानी में डाल देते हैं और निर्वाण तक पहुँचने नहीं देते। ये नीवरण हैं – कामराग, हिंसाभाव, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा।

सात बोध्यंग हैं जो चक्षु देने वाले, ज्ञानकारक प्रज्ञा बढ़ाने वाले, परेशानी से बचाने वाले और निर्वाण तक पहुँचाने वाले हैं। ये बोध्यंग हैं – स्मृति-संबोध्यंग, धर्मविचय-संबोध्यंग, वीर्य-संबोध्यंग, प्रीति-संबोध्यंग, प्रश्रब्धि-संबोध्यंग, समाधि-संबोध्यंग तथा उपेक्षा-संबोध्यंग।

अप्रमत्त भिक्षु इन सात बोध्यंगों को भावित करता और बढ़ाता ही है। ऐसा करने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है।

## (५) चक्कवत्ति-वग्ग

[सुत्त – विधा, चक्कवत्ति, मार, दुप्पञ्ञ, पञ्ञवन्त, दलिद्द, अदलिद्द, आदिच्च, अज्झत्तिक, बाहिरङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि –

जैसे चक्रवर्ती राजा के होने पर सात रत्न प्रकट होते हैं, वैसे ही तथागत के होने पर सात बोध्यंग प्रकट होते हैं।

मार की सेना को खदेड़ने का उपाय है – यही सात बोध्यंग।

किसी भी काल में अभिमान को छोड़ा जा सकता है, तो केवल सात बोध्यंगों को भावित करके वा बढ़ा कर ही।

जो इन बोध्यंगों को भावित करते वा बढ़ाते हैं, वे कहलाते हैं – 'प्रज्ञावान निर्भीक' अथवा 'अदरिद्र'। जो ऐसा नहीं करते हैं, वे कहलाते हैं – 'दुष्प्रज्ञ, बहरे-गूंगे' अथवा 'दरिद्र'।

## (६) साकच्छ-वग्ग

[सुत्त – आहार, परियाय, अग्गि, मेत्तासहगत, सङ्गारव, अभय।]

भगवान ने भिक्षुओं को पांच नीवरणों और सात बोध्यंगों के 'आहार' और 'अनाहार' का उपदेश दिया।

उन्होंने उनको यह भी बतलाया कि जब अन्यतैर्थिक पारिव्राजक उन्हें यह कहें कि हम भी पांच नीवरणों और सात बोध्यंगों के बारे में अपने श्रावकों को वैसा ही उपदेश देते हैं जैसा कि श्रमण गौतम, तो उन्हें कहना चाहिए कि एक ऐसा भी दृष्टिकोण है जिसके अनुसार 'पांच' नीवरण 'दस', और 'सात' बोध्यंग 'चौदह' हो जाते हैं। वे परिव्राजक इस बात को समझा नहीं पायेंगे।

ऐसे ही उन परिव्राजकों से यह भी पूछना चाहिए कि जिस समय चित्त संकोची होता है, उस समय किन बोध्यंगों को भावित करना चाहिए और किन्हें नहीं ? और जब चित्त चंचल होता है, तब किन्हें भावित करना चाहिए और किन्हें नहीं? वे परिव्राजक इसे भी नहीं समझा पायेंगे।

तत्पश्चात भगवान ने स्वयं इस सारे प्रकरण पर विस्तार से प्रकाश डाला।

ऐसे ही चार ब्रह्मविहारों को लेकर यदि अन्यतैर्थिक परिव्राजक यह कहें कि हम भी अपने श्रावकों को वैसा ही धर्मोपदेश करते हैं जैसा कि श्रमण गौतम, तो उनसे पूछना चाहिए कि किस प्रकार भावना किये गये किस ब्रह्मविहार से चित्त की विमुक्ति के क्या परिणाम होते हैं? वे परिव्राजक इसे नहीं समझा पायेंगे।

भगवान ने इस प्रकरण को भी स्पष्ट किया।

उन्होंने सङ्गारव ब्राह्मण के इस प्रश्न का भी अनेक उपमाएं देते हुए समाधान किया कि कभी-कभी लंबे समय तक स्वाध्याय किये हुए मंत्र भी नहीं सूझते, और कभी-कभी लंबे समय तक स्वाध्याय न किये हुए मंत्र भी झट सूझ जाते हैं। उन्होंने कहा कि चित्त के नीवरणों द्वारा अभिभूत होने अथवा न होने से, क्रमशः, ये दो प्रकार की स्थितियां पैदा होती हैं। सात आवरणरहित बोध्यंगों को भावित करने और बढ़ाने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है। यह सुनकर वह ब्राह्मण आश्चर्यचकित एवं भावविभोर हो भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

भगवान ने राजकुमार अभय को भी स्पष्ट किया कि परम ज्ञान का अ-दर्शन

अथवा दर्शन स-कारण ही होता है, अ-कारण नहीं। इस संदर्भ में उन्होंने उसे पांच नीवरणों और सात बोध्यंगों की जानकारी दी।

## (७) आनापान-वग्ग

[सुत्त – अट्ठिक महप्फल, अञ्ञतरफल, महत्थ, योगक्खेम, संवेग, फासुविहार, पुळवक, विनीलक, विच्छिद्दक, उद्धुमातक, मेत्ता, करुणा, मुदिता, उपेक्खा, आनापान।]

इन सुत्तों में निम्नांकित को भावित करने और बढ़ाने से महान फल प्राप्त होना बतलाया गया है –

अस्थिक संज्ञा, पुळवक संज्ञा, विनीलक संज्ञा, विच्छिद्रक संज्ञा, उद्धमातक संज्ञा, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा तथा आनापान।

इनको भावित करने और बढ़ाने से दो में से एक फल अवश्य प्राप्त होता है – इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा कुछ उपादान शेष रह जाने पर अनागामिता।

इस प्रकार महार्थ की सिद्धि, महा-योगक्षेम, महा-संवेग और सुख-विहार होता है।

## (८) निरोध-वग्ग

[सुत्त – असुभ, मरण, आहारेपटिकूल, अनभिरति, अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, पहान, विराग, निरोध।]

पिछले वर्ग के सुत्तों के समान निम्नांकित को भी भावित करने और बढ़ाने से वैसा ही फल प्राप्त होना बतलाया गया है –

अशुभसंज्ञा, मरणसंज्ञा, प्रतिकूलसंज्ञा, सारे लोक में अनभिरतिसंज्ञा, अनित्यसंज्ञा, दुःखसंज्ञा, अनात्मसंज्ञा, प्रहाणसंज्ञा, विरागसंज्ञा तथा निरोधसंज्ञा।

## (९) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त – गङ्गानदीआदि-सुत्तद्वादसक]

इन सुत्तों में बतलाया गया है कि जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, वैसे ही सात बोध्यंगों को भावित करने और बढ़ाने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(१०) **अप्पमाद-वग्ग** [सुत्त –तथागतादि-सुत्तदसक]

(११) **बलक रणीय-वग्ग** [सुत्त –बलादि-सुत्तद्वादसक]

(१२) **एसना-वग्ग** [सुत्त –एसनादि-सुत्तनवक]

(१३) **ओघ-वग्ग** [सुत्त –ओघादि-सुत्तदसक]

(१४) **पुनगङ्गपेय्याल-वग्ग** [सुत्त –पुनगङ्गानदीआदि-सुत्तद्वादस]

(१५) **पुनअप्पमाद-वग्ग** [सुत्त –तथागतादि-सुत्तदसक]

(१६) **पुनबलक रणीय-वग्ग** [सुत्त –पुनबलादि-सुत्तद्वादसक]

(१७) **पुनएसना-वग्ग** [सुत्त –पुनएसनादि-सुत्तएकादसक]

(१८) **पुनओघ-वग्ग** [सुत्त –पुनओघादि-सुत्तदसक]

इन वर्गों के सुत्तों का सार पहले आये हुए सुत्तों के अनुसार ही बोध्यंगों के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

## ३. सतिपट्ठानसंयुत्त

यह संयुत्त दस वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ दस सुत्त हैं।

### (१) अम्बपालि-वग्ग

[सुत्त – अम्बपालि, सति, भिक्खु, साल, अकुसलरासि, सकुणग्घि, मक्कट, सूद, गिलान, भिक्खुनुपस्सय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि जीवों की विशुद्धि, शोक और विलाप के अतिक्रमण, दुःख और दौर्मनस्य के अस्तगमन, सत्य की प्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए एक ही मार्ग है – और वह है चार स्मृतिप्रस्थान।

चार स्मृतिप्रस्थान हैं –उद्योगशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बने रह कर काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करना।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि तुम्हारे लिए मेरी यही शिक्षा है कि तुम स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर विहार करो। फिर यह भी समझाया कि कोई स्मृतिमान कैसे होता है और संप्रज्ञानी कैसे?

कोई स्मृतिमान होता है काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने से। कोई संप्रज्ञानी होता है शरीर की हर परिस्थिति में (वेदनाओं के स्तर पर) अपने बारे में संपूर्ण जानकारी बनाये रखने से।

स्मृति-प्रस्थान के परिप्रेक्ष्य में भगवान ने यह भी कहा –

* इसको भावित करने से रात-दिन कुशल धर्मों में वृद्धि ही होती है, हानि नहीं।

* निर्वाण-लाभ किये हुए और निर्वाण की खोज में लगे हुए भिक्षु भी इसका अभ्यास करते हैं, और नये प्रव्रजित हुए भिक्षुओं को भी बतलाना चाहिए कि इसका भली प्रकार अभ्यास कर इसमें प्रतिष्ठित हो जायँ।

* पांच नीवरणों को 'अकुशलराशि' (पाप का ढेर) और चार स्मृतिप्रस्थानों को 'कुशलराशि' (पुण्य का ढेर) कहना समीचीन ही है।

* भिक्षु के लिए यही अपना बपौती ठांव है, वह इसी को अपनी गोचरभूमि बनाये, इससे परे न जाये। ऐसा करनेसे वह 'मार' की मार से बचा रहता है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को स्पष्ट किया कि मैंने पूरी तरह खोलकर धर्म को समझा दिया है। मेरी कोई आचार्यमुष्टि नहीं है। अतः किसी का यह सोचना कि मैं भिक्षुसंघ का संचालन करूंगा, अथवा भिक्षुसंघ मेरे उद्देश्य से है, उचित नहीं है। सब अपने आपको अपना द्वीप (शरण-स्थल) बनायें, आत्मनिर्भर हों, किसी दूसरे के भरोसे न रहें। धर्म को अपना द्वीप बनायें, धर्म की शरण ग्रहण करें, किसी अन्य की नहीं। फिर यह भी समझाया कि ऐसा होता कैसे है? ऐसा होता है काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने से।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को स्मृति-प्रस्थान की प्रणिहित और अप्रणिहित भावना के बारे में भी मार्गदर्शन किया।

## (२) नालन्द-वग्ग

[सुत्त - महापुरिस, नालन्द, चुन्द, उक्कचेल, बाहिय, उत्तिय, अरिय, ब्रह्म, सेदक, जनपदकल्याणी।]

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त के एक प्रश्न के उत्तर में उन्हें बतलाया कि चित्त के विमुक्त होने से कोई महापुरुष होता है, और चित्त के विमुक्त नहीं होने से महापुरुष नहीं होता है। चित्त की विमुक्ति होती है काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने से। ऐसा करने से चित्त रागरहित हो जाता है, और उपादान-रहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान के समक्ष यह स्वीकारोक्ति की कि मुझे सभी बुद्धों का चेतःपरिज्ञान नहीं है, किंतु सभी की धर्म-समानता मुझे विदित है। अतीत कालके बुद्धों ने पांचों नीवरणों को दूर कर, प्रज्ञा द्वारा चित्त के मैल हटा, चारों स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को सु-प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगों की यथार्थ से भावना कर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक संबोधि को प्राप्त किया था। भविष्यकालमें भी बुद्ध ऐसे ही सम्यक संबोधि प्राप्त करेंगे। और आप भगवान ने भी इसे इसी तरह प्राप्त किया है।

भगवान को आयुष्मान सारिपुत्त के परिनिर्वाण का समाचार देते हुए आयुष्मान आनन्द शोक-विह्वल हो उठे। इस पर भगवान ने उनका ध्यान अपने

उपदेश की ओर दिलाया कि सभी प्रियों से वियोग होता ही रहता है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह विनाश को प्राप्त न हो – ऐसा नहीं हो सकता। अतः अपने आप को अपना द्वीप बनाओ, आत्मनिर्भर होओ, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो। धर्म को अपना द्वीप बनाओ, धर्म की शरण ग्रहण करो, किसी अन्य की नहीं।

सारिपुत्त और मोग्गल्लान के परिनिर्वाण के कुछ ही दिन बाद भगवान ने शांत बैठे भिक्षुसंघ को संबोधित करते हुए कहा कि इन दोनों के परिनिवृत्त हो जाने से यह परिषद सूनी-सी लग रही है। जहां ये विहार किया करते, वह स्थान भरा-भरा लगा करता था। अस्तु, जो सम्यक संबुद्ध अतीत काल में हुए, उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक होते थे। जो भविष्यकाल में होंगे, उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक होंगे। इन दो अग्रश्रावकों के परिनिवृत्त हो जाने पर बुद्ध को कोई शोक अथवा विलाप नहीं है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह विनाश को प्राप्त न हो – ऐसा नहीं हो सकता। अतः अपने आप को अपना द्वीप बनाओ।

भगवान ने आयुष्मान बाहिय को बतलाया कि यदि तुम्हारा शील विशुद्ध और दृष्टि ऋजु हो जाय, तो तुम शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, चारों स्मृति-प्रस्थान भावित कर लोगे। इससे रात-दिन तुम्हारी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। तदनुसार साधना-रत हो, आयुष्मान बाहिय ने निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया। एक अन्य व्यक्ति –आयुष्मान उत्तिय –भी इसी प्रकार निर्वाण का साक्षात्कार करने में सफल हुआ।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि चारों स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने और बढ़ाने से दुःख का पूरी तरह से क्षय हो जाता है। एक अवसर पर ब्रह्मा सहम्पति ने भी कहा कि इसी मार्ग से पहले लोग तर चुके हैं, और जो बाढ़ को तैर रहे हैं वे इसे तर जायेंगे।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि अपनी रक्षा करने वाला दूसरे की रक्षा करता है, और दूसरे की रक्षा करने वाला अपनी रक्षा करता है। अतः 'अपनी रक्षा करूंगा' – ऐसे स्मृति-प्रस्थान का अभ्यास करो; 'दूसरे की रक्षा करूंगा' – ऐसे स्मृति-प्रस्थान का अभ्यास करो। फिर यह भी समझाया कि यह रक्षा किस प्रकार होती है।

उन्होंने जनपदकल्याणी की उपमा देते हुए भिक्षुओं को कायगता स्मृति को भावित करने के बारे में भी समझाया।

## (३) सीलट्ठिति-वग्ग

[सुत्त – सील, चिरट्ठिति, परिहान, सुद्ध, अञ्ञतरब्राह्मण, पदेस, समत्त, लोक , सिरिवड्ढ, मानदिन्न।]

इन सुत्तों में मुख्य रूप से बतलाया गया है कि –

* भगवान ने कुशल शीलों का प्रतिपादन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना के लिए किया।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इसे बढ़ाते रहने से बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात धर्म चिरकाल तक बना रहता है।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इसे बढ़ाते रहने से सद्धर्म की परिहानि नहीं होती।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की कुछ भी भावना कर लेने से 'शैक्ष्य' और पूरी-पूरी भावना कर लेने से 'अशैक्ष्य' होता है।

* चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने और बढ़ाने से आयुष्मान अनुरुद्ध को सहस्र लोगों का महाभिज्ञान हुआ।

* गृहपति सिरिवड्ढ और मानदिन्न ने यह कहकर अनागामी फलप्राप्त होने की बात कही कि भगवान ने जो नीचे के पांच संयोजन (बंधन) बतलाये, उनमें से हम अपने में कुछ भी अप्रहीण हुआ नहीं देखते।

## (४) अननुस्सुत-वग्ग

[सुत्त – अननुस्सुत, विराग, विरद्ध, भावित, सति, अञ्ञा, छन्द, परिञ्ञात, भावना, विभङ्ग।]

इन सुत्तों में मुख्यतया प्रतिपादित किया गया है कि –

* भगवान को 'काय में कायानुपश्यना', 'वेदनाओं में वेदनानुपश्यना', 'चित्त में चित्तानुपश्यना' और 'धर्मों में धर्मानुपश्यना' – इन पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान जागा, प्रज्ञा जागी, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। उन्होंने इन धर्मों को भावित कर लिया।

* इन चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने और बढ़ाने से सिद्ध होते हैं – एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण।

* जिन किन्हींके चार स्मृति-प्रस्थान रुक जाते हैं, उनका सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग रुक जाता है। जिन किन्हीं के ये चार स्मृति-प्रस्थान आरंभ हो जाते हैं, उनका सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग भी आरंभ हो जाता है।

* इन चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित कर और बढ़ा कर कोई अपार को भी पार कर जाता है।

* भगवान की यही शिक्षा है कि स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर विहार करे।

* स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने और बढ़ाने से दो में से एक फल प्राप्त होने की आशा करनी चाहिए – इसी जीवन में निर्वाण-लाभ अथवा उपादान के कुछ शेष रह जाने पर अनागामिता।

* चार स्मृति-प्रस्थानों का अभ्यास करने से तृष्णा जाती रहती है, जिससे निर्वाण का साक्षात्कार हो जाता है।

* स्मृति-प्रस्थानों की भावना से तात्पर्य होता है काय, वेदनाओं, चित्त तथा धर्मों में इनके उत्पाद, व्यय और उत्पाद-व्यय को देखते हुए विहार करना। स्मृति-प्रस्थानों का भावनागामी मार्ग है – यही आर्य अष्टांगिक मार्ग।

## (५) अमत-वग्ग

[सुत्त – अमत, समुदय, मग्ग, सति, कुसलरासि, पातिमोक्खसंवर, दुच्चरित, मित्त, वेदना, आसव।]

इन सुत्तों में भगवान ने प्रज्ञप्त किया है कि –

चार स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को भली प्रकार प्रतिष्ठित करने से निर्वाण सन्निकट आ जाता है।

आहार से काय का समुदय और इसके निरोध से काय का निरोध; स्पर्श से वेदना का समुदय और इसके निरोध से वेदना का निरोध; नाम-रूप से चित्त का समुदय और इसके निरोध से चित्त का निरोध; और मनन करने से धर्मों का समुदय और इसके निरोध से धर्मों का निरोध हो जाता है।

जीवों की विशुद्धि, शोक और विलाप के अतिक्रमण, दुःख और दौर्मनस्य के अस्तगमन, सत्य की प्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए एक ही मार्ग है – और वह है चार स्मृति-प्रस्थान।

भिक्षु स्मृतिमान होकर विहार करे – यही मेरी शिक्षा है।

चार स्मृति-प्रस्थान केवल पुण्य का ढेर है।

भिक्षु प्रातिमोक्ष-संवर से संवृत हो विहार करें –आचार-विचार से संपन्न हो, थोड़ी-सी भी बुराई में भय देखने वाले होकर और शिक्षापदों को मानते हुए। इस प्रकार शील में प्रतिष्ठित होकर वे चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने योग्य हो जाते हैं।

कायिक ,वाचिक और मानसिक दुश्चरित्र को छोड़कर कायिक ,वाचिक और मानसिक सुचरित्र को भावित करना चाहिए। ऐसा करने से, शील में प्रतिष्ठित हो, चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करना संभव हो जाता है।

अपने अभिन्न मित्रों वा बंधु-बांधवों को चार स्मृति-प्रस्थानों के बारे में बतलाकर इनमें प्रतिष्ठित करना चाहिए।

तीन प्रकार की वेदनाएं हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद। इन वेदनाओं के परिज्ञान के लिए चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करना चाहिए।

तीन आस्रव हैं –कामास्रव, भवास्रव तथा अविद्यास्रव। इन आस्रवों के प्रहाण के लिए चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करना चाहिए।

**(६) गङ्गापेय्याल-वग्ग** [सुत्त –गङ्गानदीआदि-सुत्तद्वादसक]

**(७) अप्पमाद-वग्ग** [सुत्त –तथागतादि-सुत्तदसक]

**(८) बलकरणीय-वग्ग** [सुत्त –बलादि-सुत्तद्वादसक]

**(९) एसना-वग्ग** [सुत्त –एसनादि-सुत्तएकादसक]

**(१०) ओघ-वग्ग** [सुत्त –उद्धम्भागियादि-सुत्तदसक]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकोंके साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान चार स्मृति-प्रस्थानों को लेकर धर्म समझाया गया है।

## ४. इंद्रियसंयुत्त

यह संयुत्त सत्रह वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ अस्सी सुत्त हैं।

### (१) सुद्धिक-वग्ग

[सुत्त – सुद्धिक, पठमसोतापन्न, दुतियसोतापन्न, पठमअरहन्त, दुतियअरहन्त, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, दट्ठब्ब, पठमविभङ्ग, दुतियविभङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि इंद्रियां पांच होती हैं – श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय। इन पांच इंद्रियों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः जानने से आर्यश्रावक 'स्रोतापन्न' कहलाने लगता है और ऐसा यथार्थतः जानकर उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाये, तो 'अर्हत' कहलाता है। जो श्रमण अथवा ब्राह्मण ऐसा यथार्थतः नहीं जानते, वे इस जीवन में श्रमणत्व अथवा ब्राह्मणत्व का स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर विहार नहीं कर पाते हैं।

भगवान ने यह भी बतलाया कि किस इंद्रिय को कहां देखा जाता है? श्रद्धा-इंद्रिय को देखा जाता है चार स्रोतापत्ति अंगों में, वीर्य-इंद्रिय को चार सम्यक प्रधानों में, स्मृति-इंद्रिय को चार स्मृति-प्रस्थानों में, समाधि-इंद्रिय को चार ध्यानों में, और प्रज्ञा-इंद्रिय को चार आर्य सत्यों में। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ये इंद्रियां क्या होती हैं।

### (२) मुदुतर-वग्ग

[सुत्त – पटिलाभ, पठमसङ्खित्त, दुतियसङ्खित्त, ततियसङ्खित्त, पठमवित्थार, दुतियवित्थार, ततियवित्थार, पटिपन्न, सम्पन्न, आसवक्खय।]

भगवान ने पांच इंद्रियों के बारे में बतलाया कि ये क्या होती हैं? बुद्ध के बुद्धत्व में श्रद्धा कहलाती है 'श्रद्धा-इंद्रिय'; चार सम्यक प्रधानों को लेकर वीर्य का लाभ 'वीर्य-इंद्रिय'; चार स्मृति-प्रस्थानों को लेकर स्मृति का लाभ 'स्मृति-इंद्रिय'; आर्यश्रावक द्वारा निर्वाण को आलंबन कर समाधि, चित्त की एकाग्रता का लाभ 'समाधि-इंद्रिय'; और आर्यश्रावक द्वारा धर्मों के उत्पाद-व्यय

के स्वभाव को प्रज्ञापूर्वक जानने से बंधनों का कट जाना और दुःखों का बिल्कुल क्षय हो जाना 'प्रज्ञा-इंद्रिय' ।

इन इंद्रियों के परिपूर्ण हो जाने से कोई व्यक्ति 'अर्हत' हो जाता है, कुछ कमी रह जाने पर 'अनागामी', और कमी रहने पर 'सकृदागामी', और इसी प्रकार अधिकाधिक कमी रहने पर उतरते क्रम से 'स्रोतापन्न', 'धर्मानुसारी' तथा 'श्रद्धानुसारी'। इसका कारण होता है –इंद्रियों की, फल की, बल की और पुरुषों की भिन्नता। जिस किसी की ये पांच इंद्रियां सर्वथा न के बराबर होती हैं, उसे 'बाहर का, अज्ञ' कहा जाता है।

भगवान ने सभी इंद्रियों के परिपूर्ण हो जाने से किसी व्यक्ति का 'अर्हत' हो जाना तो बतलाया ही, पर थोड़ी-थोड़ी कमी रह जाने पर उतरते क्रम से मुमुक्षुओं को इन संज्ञाओं से भी अभिहित किया –'अन्तरा परिनिर्वायी', 'उपहत्य परिनिर्वायी', 'असंस्कार परिनिर्वायी', 'ससंस्कार परिनिर्वायी', 'ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामी', 'सकृदागामी', 'धर्मानुसारी' तथा 'श्रद्धानुसारी'।

भगवान ने स्पष्ट किया कि कोई 'इंद्रिय-संपन्न' कैसे कहलाता है, और यह भी बतलाया कि पांच इंद्रियों के भावित होने और बहुलीकरण से भिक्षु आस्रवों के क्षीण हो जाने से अनास्रव चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है।

### (३) छळिंद्रिय-वग्ग

[सुत्त – पुनब्भव, जीवितिंद्रिय, अञ्ञिंद्रिय, एकबीजी, सुद्धक, सोतापन्न, अरहन्त, सम्बुद्ध, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण।]

भगवान ने पूर्व-वर्णित पांच इंद्रियों के अतिरिक्त छः इंद्रियों की बात भी कही है। ये छः इंद्रियां हैं –चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन। उन्होंने बतलाया कि जब तक मैंने इन पांच अथवा छः इंद्रियों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण को यथार्थतः नहीं जान लिया तब तक मैंने अपने सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया।

भगवान ने तीन इंद्रियों का होना भी बतलाया – स्त्री-इंद्रिय, पुरुष-इंद्रिय, जीवित-इंद्रिय; अथवा 'अज्ञात को जानूंगा'-इंद्रिय, 'ज्ञान-इंद्रिय' तथा 'परमज्ञान-इंद्रिय'।

## (४) सुखिंद्रिय-वग्ग

[सुत्त – सुद्धिक, सोतापन्न, अरहन्त, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, पठमविभङ्ग, दुतियविभङ्ग, ततियविभङ्ग, कट्ठोपम, उप्पटिपाटिक।]

भगवान ने पांच इंद्रियों का होना बतलाया – सुख-इंद्रिय, दुःख-इंद्रिय, सौमनस्य-इंद्रिय, दौर्मनस्य-इंद्रिय और उपेक्षा-इंद्रिय। इन पांच इंद्रियों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः जानने से आर्यश्रावक 'स्रोतापन्न' कहलाने लगता है और ऐसा यथार्थतः जानकर उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाय, तो 'अरहंत' कहलाता है। जो श्रमण अथवा ब्राह्मण ऐसा यथार्थतः नहीं जानते, वे इस जीवन में श्रमणत्व अथवा ब्राह्मणत्व को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर विहार नहीं कर पाते हैं।

काय-संस्पर्श से होने वाली सुखद वेदना कहलाती है 'सुख-इंद्रिय'; काय-संस्पर्शसे होने वाली दुःखद वेदना 'दुःख-इंद्रिय'; मनः-संस्पर्श से होने वाली सुखद अनुभूति 'सौमनस्य-इंद्रिय'; मनः-संस्पर्श से होने वाली दुःखद अनुभूति 'दौर्मनस्य-इंद्रिय'; और कायिक अथवा मानसिक सुख या दुःख का न होना 'उपेक्षा-इंद्रिय'।

'सुख-इंद्रिय' और 'सौमनस्य-इंद्रिय' की वेदना सुखद जाननी चाहिए; 'दुःख-इंद्रिय' और 'दौर्मनस्य-इंद्रिय' की वेदना दुःखद; और 'उपेक्षा-इंद्रिय' की वेदना अदुःखद-असुखद।

इस प्रकार ये पांच इंद्रियां पांच होकर भी तीन (सुख, दुःख और उपेक्षा) हो जाती हैं, और एक दृष्टिकोण से तीन होकर पांच हो जाती हैं।

भगवान ने इन इंद्रियों की उत्पत्ति और निरोध पर भी प्रकाश डाला। सुख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होती है 'सुख-इंद्रिय'; दुःख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'दुःख-इंद्रिय'; सौमनस्य-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'सौमनस्य-इंद्रिय'; दौर्मनस्य-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'दौर्मनस्य-इंद्रिय'; और उपेक्षा-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'उपेक्षा-इंद्रिय'। 'दुःख-इंद्रिय' पूर्णतया निरुद्ध हो जाती है प्रथम ध्यान में; 'दौर्मनस्य-इंद्रिय' द्वितीय ध्यान में; 'सुख-इंद्रिय' तृतीय ध्यान में; 'सौमनस्य-इंद्रिय' चतुर्थ ध्यान में; और 'उपेक्षा-इंद्रिय' संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था प्राप्त हो जाने पर।

## (५) जरा-वग्ग

[सुत्त – जराधम्म, उण्णाभब्राह्मण, साकेत, पुब्बकोट्ठक, पठमपुब्बाराम, दुतियपुब्बाराम, ततियपुब्बाराम,चतुत्थपुब्बाराम, पिण्डोलभारद्वाज, आपण।]

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा कि यौवन में बुढ़ापा, आरोग्य में व्याधि और जीवन में मृत्यु छिपी रहती है। मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती, सबको पीस देती है।

उन्होंने उण्णाभ ब्राह्मण को बतलाया कि पांच इंद्रियों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा तथा काय) का प्रतिशरण होता है मन, क्योंकि मन ही इंद्रियों के अपने-अपने विषयों का अनुभव करता है। मन का प्रतिशरण होती है स्मृति, स्मृति का विमुक्ति, विमुक्ति का निर्वाण। ब्रह्मचर्य का अंतिम लक्ष्य निर्वाण ही होता है।

उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि कैसे पांच इंद्रियों से पांच बल हो जाते हैं, और पांच बलों से पांच इंद्रियां। यह ऐसे ही है जैसे पूर्व की ओर बहने वाली नदी के बीच एक द्वीप होने से एक दृष्टिकोण से नदी की धारा एक कहलाती है, और दूसरे दृष्टिकोण से दो।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कितनी इंद्रियों के भावित करने और बढ़ाने से कोई क्षीणास्रव हो परम ज्ञान की घोषणा करता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'। यह इंद्रिय एक भी हो सकती है (प्रज्ञा-इंद्रिय), दो भी (समाधि-इंद्रिय तथा प्रज्ञा-इंद्रिय), चार भी (वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय तथा प्रज्ञा-इंद्रिय), और पांच भी (श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय तथा प्रज्ञा-इंद्रिय) ।

उन्होंने यह भी बतलाया कि भिक्षु पिण्डोल भारद्वाज ने स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय को भावित कर और बढ़ाकर परम ज्ञान प्राप्त होने की घोषणा की थी। इन तीन इंद्रियों का अंत हो जाता है जन्म, जरा और मृत्यु के क्षय में।

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा कि जो आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धावान हो, क्या वह बुद्ध या बुद्ध की शिक्षा के बारे में शंकालु हो

सक ता है? आयुष्मान सारिपुत्त ने क हा –नहीं भंते! और तदुपरांत इसक ा निदान प्रस्तुत कि या, जिसक ा भगवान ने अनुमोदन कि या।

## (६) सूक रखत-वग्ग

[सुत्त – साल, मल्लिक , सेख, पद, सार, पतिट्ठित, सहम्पतिब्रह्म, सूक रखत, पठमउप्पाद, दुतियउप्पाद।]

भगवान ने भिक्षुओं से क हाकि जैसे सभी प्राणियों में शक्ति, वेग और वीरता के क ारण मृगराज सिंह अग्र माना जाता है, वैसे ही सभी बोधिपक्षीय धर्मों में प्रज्ञा-इंद्रिय अग्र मानी जाती है।

उन्होंने यह भी क हा कि –

* जब आर्यश्रावक को आर्य-ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तभी उसकी चार इंद्रियां (श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय तथा समाधि-इंद्रिय) सम्यक रूप से प्रतिष्ठित होती हैं।

* ऐसे क ई दृष्टिकोण हैं जिनके आधार पर कोई शैक्ष्य (निर्वाण-पथ पर अग्रसर) भिक्षु शैक्ष्य-भूमि पर स्थित हो, 'मैं शैक्ष्य हूं' ऐसा जान लेता है।

* ऐसे ही क ई दृष्टिकोण हैं जिनके आधार पर कोई अशैक्ष्य (निर्वाण-प्राप्त) भिक्षु अशैक्ष्य-भूमि पर स्थित हो, 'मैं अशैक्ष्य हूं' ऐसा जान लेता है ।

* जैसे हाथी के पैर में सभी प्राणियों के पैर समा जाने से उसक ा पैर सभी पैरों में अग्र माना जाता है, वैसे ही बोधि को बताने वाले सभी पदों में 'प्रज्ञा-इंद्रिय' पद अग्र समझा जाता है।

* एक ऐसा भी धर्म है जिसमें प्रतिष्ठित होने से भिक्षु की पांचों इंद्रियां सु-भावित हो जाती हैं। यह धर्म है – अप्रमाद।

* इन पांच इंद्रियों के भावित होने और बढ़ने से निर्वाण की उपलब्धि होती है।

* तथागत के प्रादुर्भाव के बिना, न उत्पन्न हुयीं, भावित और बहुलीकृ त पांच इंद्रियां उत्पन्न नहीं होतीं।

* ऐसे ही बिना बुद्ध के विनय के ,न उत्पन्न हुयीं, भावित और बहुलीकृ त पांच इंद्रियां उत्पन्न नहीं होतीं।

भगवान द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने बतलाया कि कि स उद्देश्य

से क्षीणास्रव भिक्षु बुद्ध या बुद्ध के शासन पर माथा नवाते हैं। भगवान ने उनके कहे का अनुमोदन किया।

## (७) बोधिपक्खिय-वग्ग

[सुत्त – संयोजन, अनुसय, परिञ्ञा, आसवक्खय, पठमफल, दुतियफल, पठमरुक्ख,दुतियरुक्ख, ततियरुक्ख, चतुत्थरुक्ख।]

इन सुत्तों में प्रतिपादित किया गया है कि भावित और बहुलीकृत इंद्रियां संयोजनों के प्रहाण, अनुशय के उन्मूलन, मार्ग के परिज्ञान और आस्रवों के क्षय के लिए होती हैं। इनसे दो में से एक फल प्राप्त होने की आशा रखनी चाहिए – इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा कुछ उपादान शेष रह जाने पर अनागामिता।

भावित और बहुलीकृत इंद्रियों से सात फलों का शुभ परिणाम भी बतलाया गया है। ये सात फल हैं: इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा मृत्यु के समय निर्वाण-लाभ, अथवा पांच अवरभागीय संयोजनों का क्षय होने से अंतरा-परिनिर्वाण, अथवा उपहत्य-परिनिर्वाण, अथवा असंस्कार-परिनिर्वाण, अथवा ससंस्कार परिनिर्वाण, अथवा ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामिता।

सारे बोधिपक्षीय धर्मों में ज्ञान की प्राप्ति करानेवाली प्रज्ञा-इंद्रिय की श्रेष्ठता भी बतलायी गयी है, जैसे अन्य वृक्षों की तुलना में जंबूद्वीप में जंबू वृक्ष, त्रयस्त्रिंश देवलोक में पारिच्छत्रक वृक्ष, असुर लोक में चित्रपाटलि वृक्ष और सुपर्ण लोक में कूटशल्मली वृक्ष की श्रेष्ठता जानी जाती है।

## (८/१-१७) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग

[कुल एक सौ दस सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान पांच इंद्रियों को लेकर धर्म समझाया गया है।

## ५. सम्मप्पधानसंयुत्त

यह संयुत्त पांच वर्गों में विभाजित है, जिनमें पचपन सुत्त हैं।

### (१) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त - पाचीनादि-सुत्तद्वादसक]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि सम्यक प्रधान चार होते हैं - अनुत्पन्न पापपूर्ण अकुशल धर्म उत्पन्न न हों - इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना; उत्पन्न हुए पापपूर्ण अकुशल धर्म विदा हो जायँ - इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना; अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हों - इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना; और उत्पन्न हुए कुशल धर्म बने रहें और उनकी बढ़ोतरी हो - इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना।

उन्होंने यह भी कहा कि जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, अथवा समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं, वैसे ही इन चार सम्यक प्रधानों को भावित करने वा बढ़ाने वाला भिक्षु भी निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

### (२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग

[कुल तेंतालीस सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान सम्यक प्रधानों को लेकर धर्म समझाया गया है।

## ६. बलसंयुत्त

यह संयुत्त दस वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ दस सुत्त हैं।

### (१) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त - बलादि-सुत्तद्वादसक]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि बल पांच होते हैं - श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा। जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, अथवा समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं, वैसे ही इन पांच बलों को भावित करने वा बढ़ाने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

### (२-१) अप्पमादादि-वग्ग

[कुल अट्ठानवे सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान पांच बलों को लेकर धर्म समझाया गया है।

## ७. इद्धिपादसंयुत्त

यह संयुत्त आठ वर्गों में विभाजित है, जिनमें नवासी सुत्त हैं।

### (१) चापाल-वग्ग

[सुत्त - अपार, विरद्ध, अरिय, निब्बिदा, इद्धिपदेस, समत्त, भिक्खु, बुद्ध, ञाण, चेतिय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चार ऋद्धिपाद भावित और बहुलीकृत होने पर अपार से पार ले जाते हैं। ये चार ऋद्धिपाद हैं - छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, और मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद।

उन्होंने यह भी कहा कि -

* जिन किन्हीं के ये चार ऋद्धिपाद रुक जाते हैं उनका सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग रुक जाता है। जिन किन्हीं के ये ऋद्धिपाद शुरू हो जाते हैं उनका सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग भी शुरू हो जाता है।

* इन चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से दुःख का पूरी तरह से क्षय हो जाता है।

* ये एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होते हैं।

* किसी भी काल में ऋद्धि का पूरा-पूरा अथवा आंशिक अभिनिष्पादन तभी होता है जब चारों ऋद्धिपादों को भावित किया वा बढ़ाया जाये।

* किसी भी काल में जब कोई आस्रवों का क्षय होने से अनास्रव चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति उसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है तो यह तभी संभव हो पाता है जब चारों ऋद्धिपादों को भावित किया और बढ़ा लिया जाय।

* चारों ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ा लेने से ही तथागत 'अर्हत, सम्यक संबुद्ध' कहलाते हैं।

अंतिम सुत्त में इस बात का उल्लेख है कि भगवान ने वेसाली के चापाल चैत्य में जाकर एक दिन यह घोषणा की कि तब से तीन माह बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। इसके साथ ही उन्होंने स्मृति और संप्रज्ञान के साथ अपना आयु-संस्कार छोड़ दिया। उस समय उन्होंने यह उदान कहा कि अध्यात्म-रत और समाहित हो, मैंने आत्म-संभव (पुनर्जन्म) को कवच के ऐसा काट डाला है।

## (२) पासादकम्पन-वग्ग

[सुत्त – पुब्ब, महप्फल, छन्दसमाधि, मोग्गल्लान, उण्णाभब्राह्मण, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, भिक्खु, इद्धादिदेसना, विभङ्ग।]

भगवान ने कहा कि मेरे बुद्धत्व-लाभ करने के पहले, मेरे बोधिसत्व रहते, मेरे मन में यह हुआ कि ऋद्धिपाद की भावना का हेतु, प्रत्यय क्या है? फिर उन्होंने इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बतलाया कि कैसे चार ऋद्धिपादों के भावित और बहुलीकृत होने से अनेक प्रकार की ऋद्धियों का लाभ होता है, यहां तक कि कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय हो जाने से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है। इस प्रकार इनसे बहुत बड़े एवं कल्याणकारी परिणाम प्राप्त होते हैं।

भगवान ने इन पदों का आशय समझाया –

* छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद;

* वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद;

* चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद; और

* मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद।

एक समय भगवान के कहने पर आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कतिपय उद्धत, चपल, वाचाल, विभ्रांतचित्त, असमाहित, स्मृति-संप्रज्ञान-विहीन भिक्षुओं को अपने पैर के अंगूठे से मिगारमाता के दृढ़ प्रासाद को दोलायमान कर संविग्न कर दिया। इन आश्चर्यचकित भिक्षुओं को भगवान ने बतलाया कि चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से मोग्गल्लान भिक्षु इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है, यहां तक कि वह आस्रवों का क्षय हो जाने से आस्रव-रहित

चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता है। तुम्हें भी ऐसे ही विहार करना चाहिए।

उण्णाभ ब्राह्मण की जिज्ञासा पर आयुष्मान आनन्द ने उसे बतलाया कि छंद (इच्छा) का प्रहाण करने के लिए भगवान के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। उन्होंने उसे इस मार्ग की जानकारी भी दी, अर्थात – छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना, वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना, चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना, और मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किसी भी काल में यदि कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण बड़ी ऋद्धि वाला, महानुभाव होता है तो चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से ही। उन्होंने उनको इन पदों का आशय भी समझाया –

* ऋद्धि – अनेक प्रकार की सिद्धि।

* ऋद्धिपाद – ऋद्धियां सिद्ध करने का मार्ग।

* ऋद्धिपादभावना – छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना, वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना, चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना, और मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना।

* ऋद्धिपादभावनागामी मार्ग – आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान ने बड़े विस्तार से यह भी बतलाया कि चार ऋद्धिपादों के कैसे भावित होने और बढ़ने से बड़ा एवं कल्याणकारी परिणाम प्राप्त होता है।

## (३) अयोगुळ वग्ग

[सुत्त – मग्ग, अयोगुळ, भिक्खु, सुद्धिक, पठमफल, दुतियफल, पठमआनन्द, दुतियआनन्द, पठमभिक्खु, दुतियभिक्खु, मोग्गल्लान, तथागत।]

आयुष्मान आनन्द की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उन्हें बतलाया कि मैं ऋद्धि द्वारा मनोमय शरीर से, और चार महाभूतों से बने इस शरीर से भी, ब्रह्मलोक तक जा सकता हूं। उन्होंने यह भी बतलाया कि यह कैसे होता है।

उन्होंने इन बातों पर भी प्रकाश डाला – ऋद्धि, ऋद्धिपाद, ऋद्धिपादभावना तथा ऋद्धिपादभावनामार्ग क्या होते हैं; चार ऋद्धिपाद कौन-कौनसे होते हैं; इनको भावित करने और बढ़ाने से क्या फल प्राप्त हो सकते हैं, इत्यादि।

उन्होंने यह भी बतलाया कि मोग्गल्लान भिक्षु चार ऋद्धिपादों को भावित करनेऔर बढ़ाने से इतना बड़ा ऋद्धिशालीऔर महानुभाव हुआ है। तथागत भी इसी प्रकार इतने बड़े ऋद्धिशाली और महानुभाव हुए हैं।

### (४/१-८) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग

[कुल पचपन सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकोंके साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान चार ऋद्धिपादों को लेकर धर्म समझाया गया है।

## ८. अनुरुद्धसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें चौबीस सुत्त हैं।

### (१) रहोगत-वग्ग

[सुत्त – पठमरहोगत, दुतियरहोगत, सुतनु, पठमकण्डकी, दुतियकण्डकी, ततियकण्डकी, तण्हक्खय, सलळागार, अम्बपालिवन, बाळ्हगिलान।]

आयुष्मान अनुरुद्ध को पूछे गये कतिपय प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने इन विषयों को स्पष्ट किया –

* भिक्षु के चार स्मृतिप्रस्थान कैसे पूर्ण होते हैं?

* शैक्ष्य भिक्षु को कितने धर्मों को प्राप्त कर विहार करना चाहिए?

* अ-शैक्ष्य भिक्षु को कितने धर्मों को प्राप्त कर विहरना चाहिए?

* उन्होंने स्वयं किन धर्मों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया? वे प्रायःकर किस विहार से विहरते हैं? और किस विहार से विहरते हुए उत्पन्न हुई शारीरिक दुःख-वेदना चित्त से नहीं चिपटती है?

आयुष्मान अनुरुद्ध ने इन विषयों को प्रज्ञप्त किया –

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से तृष्णा का क्षय होता है।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने में लगे हुए भिक्षु को कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों से गृहस्थ नहीं बना सकता।

### (२) दुतिय-वग्ग

[सुत्त – कप्पसहस्स, इद्धिविध, दिब्बसोत, चेतोपरिय, ठान, कम्मसमादान, सब्बत्थगामिनि, नानाधातु, नानाधिमुत्ति, इंद्रियपरोपरियत्त, झानादि, पुब्बेनिवास, दिब्बचक्खु, आसवक्खय।]

इन सुत्तों में आयुष्मान अनुरुद्ध ने भिक्षुओं को बतलाया है कि मैं चार

स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाते रहने से सहस्र कल्पों का अनुस्मरण कर सकता हूं। इसी से मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं; कारण को कारण के रूप में और अ-कारण को अ-कारण के रूप में यथार्थतः जानता हूं; भूत, भविष्य और वर्तमान के कर्मों के विपाक को स्थान और हेतु के अनुसार यथार्थतः जानता हूं; सर्वत्रगामी प्रतिपद को यथार्थतः जानता हूं; इत्यादि। और स्मृति-प्रस्थानों की भावना और बहुलीकरण से ही मैं इन तीन विद्याओं में निष्णात हूं – पूर्व-जन्मों का स्मरण, दिव्य चक्षु और आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान।

## ९. ज्ञानसंयुत्त

यह संयुत्त पांच वर्गों में विभाजित है, जिनमें पचपन सुत्त हैं।

### (१) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त - ज्ञानादि-सुत्तद्वादसक]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर, समुद्र की ओर बहती हैं, वैसे ही भिक्षु चार ध्यानों को भावित करते वा बढ़ाते हुए निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। ये चार ध्यान हैं -

१. कामों को छोड़, अकुशल धर्मों को छोड़, स-वितर्क, स-विचार और विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरना;

२. वितर्क और विचार के शांत हो जाने से, भीतरी प्रसाद वा चित्त की एकाग्रता से युक्त, किंतु वितर्क और विचार से रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहरना;

३. प्रीति से विरक्त हो, स्मृति एवं संप्रज्ञान के साथ, उपेक्षा भाव से शरीर से ऐसे सुख की अनुभूति करना जिसके लिए आर्य कहते हैं, 'उपेक्षक, स्मृतिमान, सुखविहार करने वाला' - ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहरना; और

४. सुख और दुःख को छोड़, और सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के पहले ही जाते रहने से, न-दुःख-न-सुख वाले, तथा स्मृति और उपेक्षा से परिशुद्ध, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरना।

### (२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग

[कुल तैतालीस सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान चार ध्यानों को लेकर धर्म समझाया गया है।

## १०. आनापानसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें बीस सुत्त हैं।

### (१) एक धम्म-वग्ग

[सुत्त - एक धम्म, बोज्झङ्ग, सुद्धिक, पठमफल, दुतियफल, अरिट्ठ, महाकप्पिन, पदीपोपम, वेसाली, किमिल।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि आनापान-स्मृति एक ऐसा धर्म है जिसको भावित करने और बढ़ाने से बड़ा कल्याणकारी फल प्राप्त होता है। फिर यह भी बतलाया कि यह कैसे होता है?

उन्होंने भिक्षुओं को आश्वस्त किया कि इसे भावित करने और बढ़ाने से दो में से एक फल की आशा रखी जा सकती है -इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा कुछ उपादान शेष रह जाने पर अनागामिता।

उन्होंने इसे भावित करने और बढ़ाने से ये सात फल सिद्ध होना भी बतलाया -इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा मृत्यु के समय निर्वाण-लाभ, अथवा पांच अवरभागीय संयोजनों का क्षय होने से अंतरा-परिनिर्वाण, अथवा उपहत्य-परिनिर्वाण, अथवा असंस्कार-परिनिर्वाण, अथवा ससंस्कार-परिनिर्वाण, अथवा ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामिता।

आयुष्मान अरिट्ठ ने भगवान को बतलाया कि मैं किस प्रकार आनापान-स्मृति की भावना करता हूं। उसकी बात सुनकर भगवान ने कहा कि यही आनापान-स्मृति है, फिर भी यह जानना चाहिए कि आनापान-स्मृति विस्तार से कैसे परिपूर्ण होती है। तत्पश्चात उन्होंने उसे विस्तारपूर्वक सारी बात समझायी।

भगवान ने भिक्षुओं को आयुष्मान महाकप्पिन का उदाहरण देते हुए बतलाया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि को भावित करने और बढ़ाने से काय तथा मन में हलन-चलन नहीं होती। इसके अतिरिक्त यदि कोई भिक्षु यह चाहे कि न तो मेरा शरीर थके और न आंखें, और मेरा चित्त उपादानरहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाय, तो उसे इस समाधि को अच्छी तरह मन में लाना चाहिए।

इस समाधि के भावित और पुष्ट हो जाने से जब भिक्षु को सुखद, दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद वेदना होती है तब वह प्रज्ञा से जानता है कि ये अनित्य

हैं और इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। अतः वह अनासक्त होकर इनकी अनुभूति करता है। वह काय-पर्यंत वेदना की अनुभूति करता हुआ प्रज्ञा से जानता है कि मैं काय-पर्यंत वेदना का अनुभव कर रहा हूं; वह जीवित-पर्यंत वेदना की अनुभूति करता हुआ प्रज्ञा से जानता है कि मैं जीवित-पर्यंत वेदना का अनुभव कर रहा हूं; शरीर छूटने पर सारी वेदनाएं यहीं ठंडी हो जायेंगी, यह भी प्रज्ञा से जानता है। यह ऐसे ही है जैसे तेल और बत्ती के प्रत्यय से प्रदीप जलता है और इनके न रहने पर बुझ जाता है।

एक समय भगवान ने भिक्षुओं के समक्ष अनेक प्रकार से अशुभ भावना की बड़ाई की। इस पर अनेक भिक्षु अशुभ भावना के अभ्यास में जुट गये। उनमें से बहुतों को अपने शरीर से इतनी घृणा हो उठी कि वे शरीर का अंत करने के लिए वधक की खोज करने लगे। इस प्रकार कितनों ने ही अपने शरीर का अंत कर डाला।

तब भगवान ने सभी स्थानीय भिक्षुओं को सभागृह में एकत्रित कर यह समझाया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि को भावित और पुष्ट करने से शांत, सुंदर, सुखविहार होता है। इससे उत्पन्न होने वाले पापपूर्ण अकुशल धर्म दब जाते हैं, जैसे गर्मियों के पिछले मास में उड़ती हुई धूल अचानक खूब पानी पड़ जाने से दब जाती है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा कि यदि किसी चौराहे पर धूल का बड़ा ढेर हो, तो चारों दिशाओं से आने-जाने वाली गाड़ियों के वहां से गुजरने पर वह धूल शनैः शनैः छँटती जाती है, वैसे ही काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करते हुए पापपूर्ण अकुशल धर्म कुछ-न-कुछ छँटते रहते हैं।

## (२) दुतिय-वग्ग

[सुत्त – इच्छानङ्गल, कङ्खेय्य, पठमआनन्द, दुतियआनन्द, पठमभिक्खु, दुतियभिक्खु, संयोजनप्पहान, अनुसयसमुग्घात, अद्धानपरिञ्ञा, आसवक्खय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि को भावित करने और बढ़ाने से शैक्ष्य भिक्षु के आस्रवों का क्षय होता है। इस समाधि को आर्यविहार, ब्रह्मविहार अथवा तथागतविहार भी कहा जा सकता है, परंतु शैक्ष्यविहार दूसरा ही होता है।

उन्होंने व्यक्त किया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि के भावित एवं पुष्ट होने से चार स्मृति-प्रस्थान पूरे हो जाते हैं, चार स्मृति-प्रस्थान भावित एवं पुष्ट होने से सात बोध्यंग पूरे हो जाते हैं, और सात बोध्यंगों के भावित एवं पुष्ट होने से विद्याजनित विमुक्ति पूरी हो जाती है। उन्होंने विस्तार से यह भी बतलाया कि यह सब कैसे होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि इस समाधि के भावित एवं पुष्ट होने से संयोजनों का प्रहाण होता है, अनुशय मूल से उखड़ जाते हैं, मार्ग की पूरी-पूरी जानकारी होती है और आस्रवों का क्षय हो जाता है।

## ११. सोतापत्तिसंयुत्त

यह संयुत्त सात वर्गों में विभाजित है, जिनमें चौहत्तर सुत्त हैं।

### (१) वेळुद्वार-वग्ग

[सुत्त – चक्कवत्तिराज, ब्रह्मचरियोगध, दीघावुउपासक,
पठमसारिपुत्त, दुतियसारिपुत्त, थपति, वेळुद्वारेय्य,
पठमगिञ्जकावसथ, दुतियगिञ्जकावसथ, ततियगिञ्जकावसथ।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किसी चक्रवर्ती राजा को चार द्वीपों का प्रतिलाभ किसी आर्यश्रावक के चार धर्मों के प्रतिलाभ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होता। ये चार धर्म हैं –

१. बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा (अर्थात वह भगवान, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, अच्छी गति वाले, लोकों के जानकार, सर्वश्रेष्ठ, लोगों को राह पर लाने वाले सारथि, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं।)

२. धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा (अर्थात वह धर्म सु-आख्यात, सांदृष्टिक, सद्यःफलप्रद, 'आओ, देखो' का भाव जगाने वाला, निर्वाण के समीप ले जाने वाला, प्रत्येक के लिए हितकारी तथा विज्ञों द्वारा ज्ञेय है।)

३. संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा (अर्थात वह श्रावक-संघ जो सन्मार्ग, ऋजु मार्ग, न्याय मार्ग, उचित मार्ग पर आरूढ़ है। जो पुरुषों के ये चार जोड़े, आठ पुरुष, हैं यही भगवान का श्रावक-संघ है, जो है – स्वागत करने योग्य, सत्कार करने योग्य, पूजा करने योग्य, प्रणाम करने योग्य, संसार का अलौकिक पुण्य-क्षेत्र!)

४. आर्यों को प्रिय शीलों से युक्त होना (अर्थात ऐसे शीलों से, जो हों – अखंड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध, निर्बाध, विज्ञों द्वारा प्रशंसा-प्राप्त, मिश्रण-रहित, समाधि के लिए प्रेरक।) इन चार धर्मों से युक्त आर्यश्रावक स्रोतापन्न हो जाता है। फिर वह धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता, और उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है।

रुग्णावस्था-प्राप्त दीघावु उपासक ने भगवान के समक्ष प्रकटकि याकि मैं आप द्वारा उपदिष्ट स्रोतापत्ति के चार अंगों में प्रतिष्ठित हो चुका हूं, और छः विद्याभागीय धर्मों में भी। इसके कुछ ही समय पश्चात उपासक की मृत्यु हो

गयी। कुछ भिक्षुओं द्वारा भगवान से उसकी गति के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि वह पंडित था और धर्म-मार्ग पर आरूढ़ रहा। वह पांच अवरभागीय संयोजनों का पूरी तरह क्षय हो जाने से औपपातिक हुआ है। वह उस लोक से लौटे बिना वहीं परिनिर्वाण पा लेगा।

भगवान द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि 'स्रोतापत्ति-अंग' से अभिप्राय होता है –सत्पुरुष का सहवास, सद्धर्म का श्रवण, ठीक प्रकार का चिंतन-मनन, स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक का प्रतिपादन। 'स्रोत' से अभिप्राय होता है –आर्य अष्टांगिक मार्ग। भगवान ने इसका अनुमोदन किया।

भगवान ने इसिदत्तपुराण को कहा कि घर में रहना झंझटों से भरा होता है। यह धूल-भरा मार्ग है। प्रव्रज्या खुले आकाश के समान होती है। तुम्हें प्रमादरहित हो जाना चाहिए।

वेळुद्वार के ब्राह्मण गृहपतियों ने भगवान से याचना की कि हमें ऐसा धर्मोपदेश करें जिससे हम मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हों। इस पर भगवान ने उन्हें आत्मोपनायिक धर्म का उपदेश दिया। इसके अंतर्गत उन्होंने सात ऐसी बातें बतलायीं जो कोई भी व्यक्ति अपने साथ होने नहीं देना चाहता, और इस आधार पर वह स्वयं भी दूसरों के प्रति इन्हें व्यवहार में लाने से अपने आप को विरत रखता है। ये सात बातें हैं –जीवहिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर भाषण वा व्यर्थ का प्रलाप। ऐसा व्यक्ति बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा वाला होता है, और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होता है।

भगवान ने कहा कि जो आर्यश्रावक इन सात सद्धर्मों और इन चार स्पृहणीय स्थानों से युक्त होता है, वह अपने बारे में कह सकता है कि मेरा नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होना क्षीण हो गया है, अब मैं स्रोतापन्न हूं और मेरा संबोधि प्राप्त करना सुनिश्चित है।

भगवान ने इसे उचित नहीं बतलाया कि मनुष्यों के मरने पर तथागत के पास आ आकर पूछा जाये कि उनकी क्या क्या गति हुई है। इसके लिए उन्होंने धर्मादर्श नामक धर्म का उपदेश दिया, जिससे युक्त हो आर्यश्रावक अपने बारे में कह सकता है कि मेरा नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होना क्षीण हो गया है, अब मैं स्रोतापन्न हूं और मेरा संबोधि प्राप्त करना सुनिश्चित है। धर्मादर्श नामक उपदेश यही है –बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा, और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना।

## (२) राजकाराम-वग्ग

[सुत्त – सहस्सभिक्खुनिसङ्घ, ब्राह्मण, आनन्दत्थेर, दुग्गतिभय,
दुग्गतिविनिपातभय, पठममित्तामच्च, दुतियमित्तामच्च,
पठमदेवचारिक, दुतियदेवचारिक, ततियदेवचारिक।]

भगवान ने सहस्र-भिक्षुणी-संघ को बतलाया कि चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न हो जाता है। ये चार धर्म हैं –बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना। आर्य-विनय का यह उदयगामी मार्ग निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होता है। इन धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक सारी दुर्गतियों के भय से पार चला जाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को परामर्श दिया कि जिन पर तुम्हारी कृपा हो, और जो कोई मित्र, अमात्य अथवा बंधु-बांधव तुम्हारी बात सुनने को तैयार हों, उन्हें स्रोतापत्ति के चार अंगों के बारे में शिक्षित करो और इनमें प्रतिष्ठित करो।

त्रयस्त्रिंश लोक के कुछ देवताओं ने भी इस बात को स्वीकार किया कि पूर्व-वर्णित चार धर्मों से युक्त होने से कितनेही प्राणी मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं। भगवान ने देवताओं से कहा कि इन धर्मों से युक्त होने से लोग स्रोतापन्न हो जाते हैं, जो धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकते और जिनका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित रहता है।

## (३) सरणानि-वग्ग

[सुत्त – पठममहानाम, दुतियमहानाम, गोधसक्क,
पठमसरणानिसक्क, दुतियसरणानिसक्क, पठमअनाथपिण्डिक,
दुतियअनाथपिण्डिक, पठमभयवेरूपसन्त, दुतियभयवेरूपसन्त,
नन्दकलिच्छवि।]

भगवान ने महानाम शाक्य से कहा कि जो व्यक्ति चिरकालतक अपने चित्त को श्रद्धा, शील, श्रुतज्ञान, त्याग तथा प्रज्ञा में चरम सीमा तक भावित किये रखता है वह शरीर छूटने पर ऊर्ध्वगामी, विशेष गति वाला होता है। तुम मत डरो, तुम्हारी मृत्यु भी निष्पाप होगी।

एक अन्य अवसर पर भगवान ने उनको यह भी बतलाया कि चार धर्मों से युक्त हुआ आर्यश्रावक निर्वाणोन्मुख होता है, जैसे कि पूर्वोन्मुख पेड़ जड़ कट

जाने पर पूर्व की ओर ही जा गिरता है। चार धर्म हैं –बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना।

सरणानि शाक्य की मृत्यु हो जाने पर भगवान द्वारा उसके स्रोतापन्न होने की बात कह देने से कुछ भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ, क्योंकि उनके विचार में वह धर्म का पालन करने में शिथिल था। भगवान के कानों में यह बात पहुँचने पर उन्होंने महानाम शाक्य को स्पष्ट किया कि किस प्रकार के व्यक्ति नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि अथवा अपाय गति से पूर्णतया मुक्त हो चुके होते हैं, और कौनसे व्यक्ति इनमें न जाने वाले होते हैं। जहां तक सरणानि शाक्य का प्रश्न है, उसने मृत्यु के समय शिक्षा को सर्वथा पूर्ण कर लिया था।

रुग्णावस्था-प्राप्त अनाथपिण्डिक गृहपति को आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा, आर्यों के प्रिय शीलों से युक्तता, सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि को अपने आप में सम्यक प्रकार से देखते हुए अपनी वेदनाओं को शांत करो। गृहपति ने ऐसा ही किया जिससे उसकी वेदनाएं शांत हो गईं।

एक ऐसे ही अन्य अवसर पर इस गृहपति को आयुष्मान आनन्द ने कहा कि इन चार धर्मों को अपने आप में सम्यक प्रकार से देखने वाले को घबराहट, कँपकँपीअथवा मृत्यु से भय नहीं होते हैं –बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा तथा आर्यों के प्रिय शीलों से युक्तता। यह सुन कर गृहपति ने आयुष्मान आनन्द से कहा कि मुझे कोई डर नहीं है। मेरी बुद्ध, धर्म तथा संघ में दृढ़ श्रद्धा है, और भगवान द्वारा गृहस्थों के लिए उचित बतलाये गये शिक्षापदों में से किसी को भी मैं अपने आप में खंडित हुआ नहीं देखता हूं। इस पर आयुष्मान आनन्द बोले – गृहपति! यह कहते हुए तुमने स्रोतापत्ति-फल की बात कही है।

भगवान ने अनाथपिण्डिक गृहपति से कहा कि आर्यश्रावक के पांच भय, वैर शांत हो जाते हैं, वह स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त होता है, वह आर्यज्ञान को प्रज्ञा से खूब अच्छी तरह बींधकर देख लेता है, और यदि वह चाहे तो अपने बारे में कह सकता है कि मेरी नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि और अपाय गति क्षीण हो चुकी हैं, मैं स्रोतापन्न हूं और धर्मपथ से च्युत न होते हुए मेरा संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित है।

भगवान ने लिच्छवियों के महामात्य नन्दक को भी उन चार धर्मों के बारे में बतलाया जिनसे युक्त हुआ आर्यश्रावक स्रोतापन्न हो जाता है। उन्होंने यह भी

कहा कि ऐसा व्यक्ति दिव्य और मानुष आयु, वर्ण, सुख और आधिपत्य वाला होता है। और मैं यह कोई सुनी-सुनायी बात नहीं कह रहा हूं। मैं वही कह रहा हूं जिसे मैंने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है।

नन्दक ने भगवान के प्रति श्रद्धा का होना भीतर का स्नान बतलाया।

## (४) पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग

[सुत्त - पठमपुञ्ञाभिसन्द, दुतियपुञ्ञाभिसन्द, ततियपुञ्ञाभिसन्द, पठमदेवपद, दुतियदेवपद, देवसभाग, महानाम, वस्स, कालिगोध, नन्दियसक्क।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि पुण्य, कुशल की चार धाराएं सुख प्राप्त कराने वाली होती हैं। ये धाराएं हैं -बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना। उन्होंने चौथी धारा के दो वैकल्पिक रूप भी बतलाये -आर्यश्रावक का खूब दानशील हो, मल-मात्सर्य-रहित चित्त से घर में निवास करना; अथवा उदय-अस्त का बोध कराने वाली, सम्यक रूप से दुःखों का क्षय कराने वाली आर्य-प्रज्ञा से युक्त होना।

भगवान ने इसी संदर्भ में भिक्षुओं को चार देवपदों और चार धर्मों से युक्त पुरुष का देवताओं द्वारा स्वागत किये जाने के बारे में भी बतलाया। उन्होंने महानाम शाक्य की जिज्ञासा पर उसे स्पष्ट किया कि कोई व्यक्ति उपासक कैसे होता है, और वह शीलसंपन्न, श्रद्धासंपन्न, त्यागसंपन्न तथा प्रज्ञासंपन्न कैसे-कैसे होता है।

भगवान ने कालिगोधा शाक्यानी को स्रोतापत्ति के चार अंग बतलाये -बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धावान और खूब दानशील हो, मल-मात्सर्य-रहित चित्त से घर में निवास करना। कालिगोधा ने कहा कि ये धर्म तो मुझमें हैं। इस पर भगवान बोले -गोधे! यह कहकर तुमने स्रोतापत्ति-फल की बात कही है।

भगवान ने नन्दिय शाक्य को स्पष्ट किया कि कोई आर्यश्रावक कैसे प्रमाद-विहारी होता है, और कैसे अप्रमाद-विहारी।

## (५) सगाथक पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग

[सुत्त - पठमअभिसन्द, दुतियअभिसन्द, ततियअभिसन्द, पठममहद्धन, दुतियमहद्धन, सुद्धक, नन्दिय, भद्दिय, महानाम, अङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को सुख प्राप्त कराने वाली पुण्य, कुशल की चार धाराओं के बारे में बतलाते हुए कहा कि इन धाराओं से युक्त आर्यश्रावक के लिए यह कहना कठिन होता है कि इनके पुण्य, कुशल, सुख की उपलब्धि कितनी होती है। अतः वह असंख्येय, अप्रमेय, महापुण्यस्कंध नाम पाता है।

उन्होंने चार धर्मों – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा, और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना – की चर्चा करते हुए कहा कि इनसे युक्त हुआ आर्यश्रावक धनाढ्य, वैभवशाली, महायशस्वी कहलाता है। वह स्रोतापन्न होता है। स्रोतापत्ति के चार अंग होते हैं – सत्पुरुष का सेवन, सद्धर्म का श्रवण, ठीक प्रकार का चिंतन-मनन और स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक का प्रतिपादन।

## (६) सप्पञ्ञ-वग्ग

[सुत्त – सगाथक, वस्संवुत्थ, धम्मदिन्न, गिलान, सोतापत्तिफल, सकदागामिफल, अनागामिफल, अरहत्तफल, पञ्ञापटिलाभ, पञ्ञावुद्धि, पञ्ञावेपुल्ल।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किन चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है।

सावत्थी में वर्षावास पूरा कर आये हुए एक भिक्षु ने कपिलवत्थु के शाक्यों को भगवान के मुख से सुनी हुई यह बात कही कि ऐसे लोग कम ही होते हैं जो आस्रवों के क्षय हो जाने से आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं की अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरते हैं। इनसे अधिक होते हैं पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय हो जाने से औपपातिक हुए (अनागामी)। इनसे अधिक होते हैं तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से और अत्यंत दुर्बल हुए राग-द्वेष-मोह वाले सकृदागामी, और इनसे अधिक होते हैं तीन संयोजनों के क्षय होने से स्रोतापन्न बने हुए, जिनका धर्म-मार्ग से च्युत हुए बिना संबोधि प्राप्त करना सुनिश्चित होता है।

पांच सौ उपासकों के साथ आये हुए धम्मदिन्न उपासक की याचना पर भगवान ने उन्हें यह सीख दी कि बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा अपनाओ और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होओ।

भगवान ने महानाम शाक्य को बतलाया कि यदि कोई उपासक सत्काय के

निरोध के लिए चित्त लगा देता है, तो उसका आस्रवों से विमुक्त चित्त वाले भिक्षु से कोई अंतर नहीं होता है, क्योंकि विमुक्ति तो एक ही होती है।

उन्होंने यह भी प्रज्ञप्त किया कि ये चार धर्म भावित किये जाने और बढ़ाने से स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए होते हैं – सत्पुरुष का सेवन, सद्धर्म का श्रवण, ठीक से चिंतन-मनन करना, और स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक का प्रतिपादन करना।

यही धर्म भावित किये और बढ़ाये जाने पर सकृदागामी-फल, अनागामी-फल, अर्हत-फल के साक्षात्कार के लिए भी होते हैं, और प्रज्ञा के प्रतिलाभ, प्रज्ञा की वृद्धि और प्रज्ञा की विपुलता के लिए भी।

### (७) महापञ्ञ-वग्ग

[सुत्त – महापञ्ञा, पुथुपञ्ञा, विपुलपञ्ञा, गम्भीरपञ्ञा,
अप्पमत्तपञ्ञा, भूरिपञ्ञा, पञ्ञाबाहुल्ल, सीघपञ्ञा, लहुपञ्ञा,
हासपञ्ञा, जवनपञ्ञा, तिक्खपञ्ञा, निब्बेधिकपञ्ञा।]

इन सुत्तों में भगवान ने प्रज्ञप्त किया है कि सत्पुरुष का सेवन, सद्धर्म का श्रवण, ठीक तरह का चिंतन-मनन, और स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक की प्रतिपत्ति – इन चार धर्मों को भावित करना और बढ़ाना महाप्रज्ञता, पृथुल प्रज्ञता, विपुल प्रज्ञता, गंभीर प्रज्ञता आदि के लिए होता है।

## १२. सच्चसंयुत्त

यह संयुत्त ग्यारह वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ सैंतीस सुत्त हैं।

### (१) समाधि-वग्ग

[सुत्त – समाधि, पटिसल्लान, पठमकुलपुत्त, दुतियकुलपुत्त,
पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, वितक्क, चिन्त,
विग्गाहिक कथा, तिरच्छानकथा।]

भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि तुम समाधि की भावना करो। समाहित हुआ भिक्षु इन बातों को यथार्थतः जान लेता है –

* यह दुःख है;

* यह दुःख का समुदय है;

* यह दुःख का निरोध है; और

* यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग है।

इन्हीं चार आर्य सत्यों को लेकर भगवान ने यह भी कहा कि आत्मचिंतन में लगा हुआ भिक्षु भी इन्हें यथार्थतः जान लेता है, और किसी भी काल में कुलपुत्रों का सम्यक रूप से घर से बेघर हो प्रव्रजित होना, और श्रमण-ब्राह्मणों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना इसी प्रयोजन के लिए हुआ करता है।

भगवान ने भिक्षुओं को सचेत किया कि तुम इन पापपूर्ण अकुशल वितर्कों को मन में मत आने दो – काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क तथा विहिंसा-वितर्क। इन वितर्कों से न तो कोई अर्थ सिद्ध होता है और न ही ये आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी होते हैं। यदि वितर्कों में पड़ना ही हो, तो वे वितर्क पूर्व-वर्णित चार आर्यसत्यों के बारे में हों, क्योंकि ऐसे वितर्क अर्थ सिद्ध करने वाले और आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी होते हैं।

भगवान ने इसी प्रकार पापपूर्ण अकुशल चिंतन, लड़ाई-झगड़े की बातों और अनेक प्रकार की निरर्थक कथाओं को भी सर्वथा अनर्थपूर्ण एवं अनुपयोगी बतलाया, और इनसे बचने के लिए कहा।

## (२) धम्मचक्क प्पवत्तन-वग्ग

[सुत्त - धम्मचक्क प्पवत्तन, तथागत, खन्ध, अज्झत्तिक ायतन, पठमधारण, दुतियधारण, अविज्जा, विज्जा, सङ्कासन, तथ।]

भगवान ने सम्यक संबोधि प्राप्त क रने के पश्चात बाराणसी के इसिपतन मिगदाय में विहार क रते हुए पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना प्रथम उपदेश दिया। उन्होंने क हा -

* प्रव्रजित को इन दो अंतों क ा सेवन नहीं क रना चाहिए -क ामों के सुख के पीछे पड़ जाना, और अपने आप को घोर यातना पहुँचाना। ये दोनों ही अनर्थक ारक हैं।

* तथागत ने इन दोनों अंतों को छोड़ 'मध्यम मार्ग' क ा ज्ञान प्राप्त कि या है जो चक्षु देने वाला, ज्ञान पैदा क रने वाला और उपशम, अभिज्ञा, संबोधि तथा निर्वाण प्राप्त क राने वाला है।

* यह 'मध्यम मार्ग' आर्य अष्टांगिक मार्ग ही है, अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संक ल्प, सम्यक वाणी, सम्यक क र्मांत, सम्यक आजीविक ा, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

* चार आर्य सत्य हैं -दुःख है, दुःख क ा समुदय है, दुःख क ा निरोध है, और दुःख क ा निरोध क राने वाला मार्ग है।

* संक्षेप में पांच उपादान-स्कं ध दुःख हैं; तृष्णा है दुःख-समुदय, तृष्णा क ा अशेष निरोध है दुःख-निरोध और दुःख क ा निरोध क राने वाला मार्ग है यही आर्य अष्टांगिक मार्ग।

* पहले क भी नहीं सुने गये इन धर्मों (चार आर्यसत्यों) में मुझे चक्षु उत्पन्न हुआ, और उत्पन्न हुए - ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या, आलोक ।

* मैंने इन चार आर्य सत्यों क ा तीन प्रक ार से ज्ञानदर्शन विशुद्ध कि या -

दुःख आर्यसत्य है, यह परिज्ञेय है, इसक ा परिज्ञान क र लिया है; दुःख-समुदय आर्यसत्य है, यह प्रहाण के योग्य है, यह प्रहीण हो गया है; दुःख-निरोध आर्यसत्य है, यह साक्षात्क ार कि ये जाने योग्य है, इसक ा साक्षात्क ार हो गया है; और दुःख क ा निरोध प्राप्त क राने वाला मार्ग आर्यसत्य है, यह भावित कि ये जाने के योग्य है, यह भावित हो गया है।

* उक्त प्रकार से ज्ञानदर्शन विशुद्ध हो चुकने के पश्चात ही मैंने यह दावा किया कि 'मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गयी है'।

* मुझे जो ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ वह था –'मेरी विमुक्ति अचल है, यह मेरा अंतिम जन्म है, अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है।'

इस उपदेश के विभंग से आयुष्मान कोण्डञ्ञ को विरज, विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ –'जो कुछ समुदय धर्म वाला है, वह सब निरोध धर्म वाला भी है।'

तभी ब्रह्मलोक-पर्यंत सब लोकों में ये शब्द श्रवणगोचर हुए –"बाराणसी के पास इसिपतन मिगदाय में भगवान ने अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया है, जिसे कोई पलट नहीं सकता –न श्रमण, न ब्राह्मण, न देव, न मार, न ब्रह्मा और न इस लोक में कोई अन्य।" उसी समय दस सहस्र लोकधातु भी कंपायमान हो उठे और प्रमाणरहित अवभास लोक में प्रकट हुआ।

अञ्ञा (परम पद का ज्ञान) प्राप्त करने वाला पहला शिष्य होने के कारण आयुष्मान कोण्डञ्ञ का नाम अञ्ञा कोण्डञ्ञ पड़ा।

भगवान ने अन्य अवसरों पर भिक्षुओं को पूर्व-वर्णित चार आर्यसत्यों के बारे में बतलाया। उन्होंने पंच उपादानों के अतिरिक्त छः भीतरी आयतनों को भी दुःख आर्यसत्य बतलाया। उन्होंने आर्यसत्यों को धारण करने पर बल दिया।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःख का निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग का अज्ञान 'अविद्या' कहलाता है, और इसमें ग्रस्त व्यक्ति 'अविद्यागत'। इसके विपरीत इन चार आर्यसत्यों का ज्ञान कहलाता है 'विद्या', और इससे संपन्न हुआ व्यक्ति 'विद्यागत'।

उन्होंने यह भी कहा कि इन आर्यसत्यों को प्रकट करने के अनंत शब्द हैं, और ये चार तथ्य यथार्थ हैं, अन्यथा नहीं।

## (३) कोटिगाम-वग्ग

[सुत्त – पठमकोटिगाम, दुतियकोटिगाम, सम्मासम्बुद्ध, अरहन्त, आसवक्खय, मित्त,तथ, लोक, परिञ्ञेय्य, गवम्पति।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि चार आर्यसत्यों के अज्ञान, अप्रतिवेध के कारण दीर्घ काल से मेरा और तुम्हारा इस संसार में संधावन, संसरण चल रहा है। इन्हीं के अनुबोध, प्रतिवेध से भवतृष्णा का उच्छेद हो जाता है, भव-रज्जु कट जाती है, और नया भव प्राप्त नहीं होता।

उन्होंने यह भी कहा कि –

* जो श्रमण अथवा ब्राह्मण इन आर्यसत्यों को यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य का स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर विहार नहीं कर पाते हैं।

* जिस किसी काल में अरहंत, सम्यक संबुद्ध यथार्थ का अवबोध करते हैं, वे इन्हीं चार आर्यसत्यों का ही अवबोध करते हैं।

* मैं इन चार आर्यसत्यों को जानते, देखते आस्रवों का क्षय होना बतलाता हूं; बिना जाने, देखे नहीं।

* जिन पर तुम्हारी अनुकंपा हो, और जिन्हें समझो कि वे तुम्हारी बात सुनेंगे, उन्हें तुम इन चार आर्यसत्यों के यथार्थ ज्ञान में शिक्षित एवं प्रतिष्ठित करदो ।

* ये चार सत्य तथ्य, यथार्थ होने से 'आर्य सत्य' कहलाते हैं। तथागत के आर्य होने से भी ये 'आर्य सत्य' कहे जाते हैं।

* आर्यसत्यों में दुःख परिज्ञान के योग्य है, दुःखसमुदय प्रहाण के ,दुःखनिरोध साक्षात्कार के और दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग भावना के ।

आयुष्मान गवम्पति ने कुछ स्थविर भिक्षुओं से कहा कि मैंने स्वयं भगवान के मुख से सुनकर यह सीखा है कि जो कोई चार आर्यसत्यों में से किसी एक को देख लेता है वह बाकी तीनों को भी देख लेता है।

## (४) सीसपावन-वग्ग

[सुत्त – सीसपावन, खदिरपत्त, दण्ड, चेल, सत्तिसत, पाण, पठमसूरिय, दुतियसूरिय, इन्दखील, वादत्थिक ।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि मैंने जान-बूझ कर बहुत कुछ नहीं कहा है, क्योंकि उससे न तो कोई अर्थ सिद्ध होता है और न ही वह आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी होता है। मैंने जो कहा है, वह बहुत कम है। मैंने कहा है –"यह दुःख है", "यह दुःख का समुदय है", "यह दुःख का निरोध है", "यह दुःख के निरोध का मार्ग है।" यह अर्थ सिद्ध करने वाला और आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी है।

उन्होंने यह भी कहा कि यदि कोई सोचे कि मैं इन आर्यसत्यों को यथार्थतः जाने बिना दुःखों का बिल्कुल अंत कर लूंगा, तो यह असंभव बात है। वस्तुतः

इन आर्यसत्यों को यथार्थतः जानने के लिए ऐसे ही उद्यम करना और तत्परता बरतनी चाहिए जैसे कपड़े या सिर में आग लग जाने पर उद्यम किया जाता और तत्परता बरती जाती है।

भगवान ने कहा कि सम्यक दृष्टि चार आर्यसत्यों के ज्ञान के लाभ-समान होती है, जैसे आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण होता है। जब तक कोई तथागत उत्पन्न नहीं होते हैं, तब तक चार आर्यसत्यों की कोई बात तक नहीं करता और अंधेरा-सा छाया रहता है।

उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि जिसने चार आर्यसत्यों का अच्छी तरह दर्शन कर लिया हो, उसे कोई भी वाद-विवाद करनेवाला श्रमण अथवा ब्राह्मण धर्म से कंपायमान नहीं कर सकता, जैसे धरती में खूब अच्छी तरह गड़ा हुआ पत्थर तेज आंधी-पानी से चलायमान नहीं किया जा सकता।

## (५) पपात-वग्ग

[सुत्त – लोकचिन्ता, पपात, महापरिळाह, कूटागार, वाल, अन्धकार, पठमछिग्गळयुग, दुतियछिग्गळयुग, पठमसिनेरुपब्बतराज, दुतियसिनेरुपब्बतराज।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि लोक का चिंतन मत करो कि यह शाश्वत है अथवा अशाश्वत, अन्तवान है अथवा अनंत, इत्यादि। इस प्रकार का चिंतन अर्थयुक्त नहीं होता, और न ही आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोध तथा निर्वाण के लिए होता है। यदि चिंतन करना ही हो, तो इन बातों का करना चाहिए –"यह दुःख है", "यह दुःख का समुदय है", "यह दुःख का निरोध है", "यह दुःख का निरोध करानेवाला मार्ग है।" यह अर्थयुक्त होता है, और आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोध तथा निर्वाण के लिए होता है।

भगवान ने अनेक उपमाओं के द्वारा यह प्रतिपादित किया कि जो चार आर्यसत्यों को यथार्थतः नहीं जानते, वे जन्म देने वाले, बुढ़ापा लाने वाले, मृत्यु देने वाले, शोक-विलाप-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास लाने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं। वे दुःख से मुक्त नहीं होते। उनका दुःख किसी भयानक प्रपात, महापरिदाह नामक नरक अथवा घोर-से-घोर अंधकार से बढ़-चढ़ कर होता है।

भगवान ने यह भी कहा कि –

* यह संभव नहीं है कि कोई चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जाने बिना दुःखों का पूर्णतया अंत कर सके।

* वही लोग सबसे कठिन लक्ष्य को बींधते हैं जो चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जान लेते हैं।

* मूर्ख व्यक्ति एक बार अधम गति को प्राप्त कर जल्दी ही मनुष्यता को प्राप्त नहीं कर सकता।

* यह बड़े संयोग की बात होती है कि कोई प्राणी मनुष्यत्व का लाभ करता है। यह भी बड़े संयोग की बात होती है कि तथागत लोक में उत्पन्न होते हैं। यह भी बड़े संयोग की बात होती है कि उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मविनय लोक में प्रकाशित होता है।

* चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जानने वाले, सम्यक दृष्टिसंपन्न आर्यश्रावक के दुःख का वह अंश बड़ा होता है जो समाप्त हो चुका होता है, जो बचा हुआ होता है वह अपेक्षाकृत कम होता है।

## (६) अभिसमय-वग्ग

[सुत्त - नखसिख, पोक्खरणी, पठमसम्भेज्ज, दुतियसम्भेज्ज, पठममहापथवी, दुतियमहापथवी, पठममहासमुद्द, दुतियमहासमुद्द, पठमपब्बतूपम, दुतियपब्बतूपम।]

इन सुत्तों में भगवान ने उपमाओं के द्वारा भिक्षुओं को समझाया है कि चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जानने वाले, सम्यक दृष्टिसंपन्न आर्यश्रावक के दुःख का वह अंश बड़ा होता है जो समाप्त हो चुका होता है, जो बचा हुआ होता है वह अपेक्षाकृत कम होता है।

## (७) पठमआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त - अञ्ञत्र, पच्चन्त, पञ्ञा, सुरामेरय्य, ओदक, मत्तेय्य, पेत्तेय्य, सामञ्ञ, ब्रह्मञ्ञ, पचायिक।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले जीव कम हैं, अन्यान्य योनियों में जन्म लेने वाले बहुत। सो क्यों? चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से।

उन्होंने कहा कि इसी कारणवश आर्य प्रज्ञा-चक्षु से युक्त लोग कम हैं, अविद्या

को प्राप्त हुए सम्मूढ़ बहुत; सुरा, मेरय, मद्यादि से विरत रहने वाले कम हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

## (८) दुतियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – पाणातिपात, अदिन्नादान, कामेसुमिच्छाचार, मुसावाद, पेसुञ्ञ, फरुसवाचा, सम्फप्पलाप, बीजगाम, विकालभोजन, गन्धविलेपन]

भगवान ने कहा कि चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से जीवहिंसा से विरत रहने वाले कम हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; चोरी से विरत रहने वाले कम हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; व्यभिचार से विरत रहने वाले कम हैं, इससे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

## (९) ततियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – नच्चगीत, उच्चासयन, जातरूपरजत, आमक धञ्ञ, आमक मंस, कुमारिक, दासिदास, अजेळक, कुक्कुटसूकर, हत्थिगवस्स।]

भगवान ने कहा कि चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से नाच, गाने-बजाने और अश्लील हावभाव देखने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; सोना-चांदी ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; कच्चा मांस ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

## (१०) चतुत्थआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – खेत्तवत्थु, कयविक्कय, दूतेय्य, तुलाकूट, उक्कोटन, छेदनादि-सुत्तछक्क।]

ऐसे ही भगवान ने कहा कि क्षेत्र-वस्तु (खेत एवं खेत में उपजी वस्तु) ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; ठगने, धोखा देने, दगा देने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; काटने-मारने-बांधने-चोरी-डकैती,क्रूर-कर्मसे विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

## (११) पञ्चगतिपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – मनुस्सचुतिनिरय, मनुस्सचुतितिरच्छान,
मनुस्सचुतिपेत्तिविसय, मनुस्सचुतिदेवनिरयादि-सुत्ततिक ,
देवचुतिनिरयादि-सुत्ततिक , देवमनुस्सनिरयादि-सुत्ततिक ,
निरयमनुस्सनिरयादि-सुत्ततिक , निरयदेवनिरयादि-सुत्ततिक ,
तिरच्छानमनुस्सनिरयादि-सुत्ततिक , तिरच्छानदेवनिरयादि-सुत्ततिक ,
पेत्तिमनुस्सनिरयादि-सुत्ततिक , पेत्तिदेवनिरयादि-सुत्तदुक ,
पेत्तिदेवपेत्तिविसय।]

भगवान ने कहा कि ऐसे सत्त्व कम ही होते हैं जो मनुष्ययोनि से च्युत होकर मनुष्य अथवा देव योनि में, देवयोनि से च्युत होकर देव अथवा मनुष्य योनि में, नरक से च्युत होकर मनुष्य अथवा देव योनि में, पशुयोनि से च्युत होकर मनुष्य अथवा देव योनि में और प्रेतयोनि से च्युत होकर मनुष्य अथवा देव योनि में उत्पन्न होते हों, अन्यथा अधिक सत्त्व तो नरक , अथवा पशुयोनि, अथवा प्रेतयोनि में उत्पन्न होते हैं। सो क्यों? चार आर्यसत्यों के अज्ञानवश।

ये आर्यसत्य हैं –दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःख का निरोध प्राप्त कराने वाला मार्ग।

इन आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्नशील होना चाहिए।